

रामपुर की सदारंग-परम्परा और प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति

— सरयू कालेकर



पालय

रामपुरी-५

1127

भारतीय संगीत के वर्तमान लक्ष्य की दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी का विशेष महत्व है। आधुनिक लक्ष्य के 'सम्प्रदायों' (गुरु-शिष्य-परम्परा से प्रवहमान प्रयोग-धारा) का देश-काल पात्रगत सीधा मूल अठारहवीं शताब्दी से पूर्व तक खोजना कई बार कठिन हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में रामपुर रियासत में 'सदारंग-सम्प्रदाय' की प्रतिष्ठा के इतिहास, उस सम्प्रदाय के मर्म या हार्द और उसके वितान या विस्तार पर उपयोगी सामग्री दी गई है।

७३

31:2127
आम्नाय-ग्रन्थाभ्य,
भारतविधि, करौंते
वाराणसी-६

आभिनव-ग्रन्थालय,

प्रतिनिधि, करौली

नारायणी-5

रामपुर की सदाशिव-परम्परा
और प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति

रामपुर की सदारंग-परम्परा और प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति

आम्नाय-ग्रन्थालय,
प्रतिनिधि, करौली
वाराणसी-5

सरयू कालेकर

बृहस्पति पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली

संस्करण : 1984

मूल्य : साठ रुपये

**प्रकाशक : बृहस्पति पब्लिकेशन्स, साहित्य संगीत संगम
डी/4सी, डी. डी. ए. फ्लैट्स, मुनीरिका
नई दिल्ली-110067**

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

आदरणीय (स्व०) आचार्य बृहस्पति
को सादर

THESE THINGS ARE NOT

TO BE

अम्नाय-बन्ध्यालय,

भरतमित्र, करीबी

बाराणसी-६

भूमिका

भारतीय संगीत के वर्तमान लक्ष्य की दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी का विशेष महत्व है। आधुनिक लक्ष्य के 'सम्प्रदायों' (गुरु-शिष्य परम्परा से प्रवहमाण प्रयोग-धारा) का देश-काल पात्रगत सीधा मूल अठारहवीं शताब्दी से पूर्व तक खोजना कई बार कठिन हो जाता है। अतः उस काल पर जिस ओर से भी प्रकाश की किरण मिल सके उसका स्वागत होना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक में रामपुर रियासत में 'सदारंग सम्प्रदाय' की प्रतिष्ठा के इतिहास, उक्त सम्प्रदाय के मर्म या हार्द और उसके वितान या विस्तार पर उपयोगी सामग्री दी गई है। चतुर्थ से षष्ठ अध्याय तक का अंश इस प्रसंग में उपादेय है।

आचार्य बृहस्पति के कृतित्व से सम्बन्धित सप्तम अध्याय, श्रद्धालु की लेखनी से प्रसूत होने पर भी, उनके जीवन-कार्य के कुछेक पहलुओं पर प्रामाणिक परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करता है। संगीतशास्त्र के शोधपरक अध्ययन को आचार्य बृहस्पति की देन पर तो वास्तव में पृथक् रूप से लिखा जाना आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक का सम्बन्ध विशेष रूप से 'लक्ष्य' के साथ होने के कारण 'लक्षण' पर विशेष चर्चा उसमें प्रासंगिक भी नहीं है। किन्तु १९५० के बाद के तीन दशकों में 'लक्षण' के अध्ययन के मूल स्रोतों को लेकर जो भी काम हुआ है, उसका इतिहास जब भी संकलित होगा, उसमें आचार्य बृहस्पति का नाम अग्रणी के रूप में अवश्य अंकित होगा।

तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन के लिए इस प्रकार की पुस्तकें मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं। अतः यह ऐसा शुभारम्भ है, जिसमें अनेक सम्भावनाएं छिपी हुई हैं। एक बड़े अभाव की पूर्ति की दिशा में यह पहला चरण है।

पुस्तक में समाविष्ट मानचित्रों से तत्कालीन देशगत स्थिति का सुबोध अंकन स्वागत-योग्य है।

विद्यार्थियों में वर्तमान लक्ष्य के प्रति सूझबूझ का विकास करने और वर्तमान काल के निकटवर्ती इतिहास के प्रति जागरूकता लाने में यह पुस्तक अच्छा योगदान कर सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

सुश्री सरयू कालेकर 'क्रियाकुशल' गुणी और सफल प्राध्यापिका हैं। श्रेष्ठ गुरुओं का विशेषतः आचार्य बृहस्पति का शिष्यत्व आपको प्राप्त रहा है। आप स्वस्थ रहते हुए, दीर्घकाल तक भारतीय संगीत की सेवा करती रहें, यह मेरी हार्दिक शुभकामना है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
गंगादशमी, शुक्रवार ८ जून १९८४

प्रेमलता शर्मा
अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग
संगीत एवं नाट्य संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी (उ०प्र०)

ॐ बृहस्पतये नमः

दो शब्द

इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा मुझे परम पूजनीय आचार्य बृहस्पति जी के परलोकगमन के पश्चात् प्राप्त हुई। उनका दुर्लभ सत्संग, जो मुझे १२ वर्षों तक मिलता रहा, अविस्मरणीय है। उनके संस्मरण की एक-एक बातें उल्लेखनीय हैं। उनका जीवन चिन्तन में ही व्यतीत हुआ। सरस्वती के साक्षात् वरद पुत्र होकर उन्होंने वीणा और पुस्तक की पूजा अंतिम क्षण तक की। घर का वातावरण एक ओर पुस्तक-भंडार से सुशोभित था तो दूसरी ओर बाघों के तार शंकृत होकर आहत नाद से परे 'अनहद' नाद की अनुभूति कराते थे।

इस पुस्तक में आचार्य बृहस्पति द्वारा रामपुर परम्परा को योगदान और उस परम्परा का सीधा संबंध सदारंग जैसे मूर्धन्य कवि व कलाकार से दिग्दर्शित किया गया है। आचार्य महोदय ने इसी परम्परा की शिक्षा मुझे तथा मेरी सहोदरा श्रीमती सुलोचना बृहस्पति को दी है। अतः इस परम्परा से हमारा अटूट प्रेम व श्रद्धा होना स्वाभाविक है। आचार्य जी की स्मृति में यह पुस्तक लिखी गई है अतः उन्हें ही सादर समर्पित है। उनकी कीर्ति संगीत जगत् के कण-कण में फैलती रहेगी; उनके ज्ञान का आलोक हमारा सदैव षथ-प्रदर्शक रहेगा।

आचार्य जी के परम मित्र (स्व०) डा० विश्वनाथ गौड़ जी का हृदय से स्मरण करती हूँ जिन्होंने आचार्य जी के देहावसान के पश्चात् मुझे इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा दी है। डा० गौड़ हिन्दी व संस्कृत के उच्च विद्वान् थे और सनातन धर्म कालेज, कानपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर आचार्य महोदय के साथ ही कार्य करते थे। दोनों विद्वानों का मेल नीर-क्षीर के समान था। आचार्य जी के अन्तरंग मित्र होने के नाते डा० गौड़ जी द्वारा मुझे आचार्य बृहस्पति के कर्मठ जीवन का इतिहास ज्ञात हुआ। प्रिय मित्र का वियोग असहनीय था और दो वर्ष बाद ही डा० गौड़ दिसम्बर 1981 में परलोक सिंघार गये। मैं उन्हें सादर नमन करती हूँ।

पुस्तक आदि से अंत तक डा० प्रेमलता शर्मा, अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के निर्देशन में लिखी गई है। आदरणीय दीदी के प्रेम, सहयोग और दिग्दर्शन से मुझे अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जिसके लिए मैं उनकी सदैव ऋणी रहूंगी। उनको मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और

मेरी यही प्रार्थना है कि बड़ी बहन का आशीर्वाद मुझे सदैव इसी प्रकार प्राप्त होता रहे ।

पुस्तक को मूल रूप देने में मुख्य सहायिका मेरी बहन श्रीमती सुलोचना बृहस्पति हैं जिन्होंने आचार्य जी द्वारा लिखित साहित्य व संगीत की रचनाओं को उपलब्ध कराया । साथ ही आपके साथ हुए विचार-विमर्श से मुझे आचार्य महोदय के जीवन से संबंधित अनेक तथ्यों की जानकारी हुई ।

आचार्य जी के कनिष्ठ पुत्र श्री सौभाग्य वर्धन एम० ए० (संगीत, गायन) ने पाण्डुलिपि तैयार करने में मेरी समय-समय पर सहायता की है । द्वितीय पुत्र श्री आमोद वर्धन, जो 'बृहस्पति पब्लिकेशन्स' का कार्य कर रहे हैं, ने इस पुस्तक का प्रकाशन इस प्रकाशन-संस्था के अन्तर्गत करने का निश्चय करके मेरा भार हल्का किया है । मैं श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल, रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली को हार्दिक धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के मुद्रण में रूचि ली, जिनके बिना मेरी पुस्तक पाठकों के सम्मुख आनी संभव नहीं थी ।

पुस्तक में त्रुटियाँ संभव हैं । अतः पाठकों से निवेदन है कि वे मुझे अवगत कराएं; मैं स्वागत करूंगी ।

134, सेक्टर 23 ए
चंडीगढ़

—सरयू कालेकर

अभिजाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करीब
वाराणसी-5

अनुक्रम

- विषय-प्रवेश** 13-21
- संगीत विषयक अनुसंधान की आवश्यकता, संगीत को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ, भौगोलिक परिस्थितियाँ, राजनैतिक परिस्थितियाँ ।
- मुगल साम्राज्य का विकास और भारतीय संगीत पर उसका प्रभाव** 22-32
- मुगल साम्राज्य का संक्षिप्त इतिहास, मुगल शासनकाल में भारतीय संगीत की प्रगति, सदारंग जीवनवृत्त और कृतित्व ।
- रुहेला राजवंश** 33-49
- रामपुर रियासत की स्थापना, रुहेले नवाबों का संगीत प्रेम ।
- रामपुर की संगीतिक परम्परा का मर्म** 50-61
- सदारंग परम्परा से संबंध, कल्याण ठाठ और उसका महत्व, मूच्छना पद्धति पर आधारित स्वर, भेद प्रक्रिया से ठाठों की प्राप्ति, नवीन रागों की निर्माण की वैज्ञानिक पद्धति ।
- रामपुर-परम्परा के गुणियों का भारत के विभिन्न क्षेत्रों से संबंध** 62-73
- उत्तर-प्रदेश में रामपुर के संगीत की सर्वश्रेष्ठ स्थिति, सहस्रवान और रामपुर, अवध के कलाकार और रामपुर, ग्वालियर घराना और रामपुर, मैहर और रामपुर, महाराष्ट्र के संगीतकार और रामपुर, आगरा घराना और रामपुर, कलकत्ता में बसे रामपुर के गुणी, उपसंहार ।

मुआरिफुन्नगमात की रचना और 'लक्ष्यसंगीत' पर
रामपुर परम्परा का प्रभाव

74-83

स्व० ठाकुर नवाब अली द्वारा संगीत प्रचार, महाराष्ट्र का
लक्ष्य-संगीत ग्रन्थ, स्व० भातखंडे जी का मतभेद, दोनों ग्रन्थों का
तुलनात्मक विश्लेषण ।

रामपुर परम्परा के प्रतिनिधि- आचार्य बृहस्पति

84-142

आचार्य जी का जीवन-वृत्त, प्रचीन शास्त्रों का स्पष्टीकरण,
इतिहासपरक अनुसन्धान, रागों पर विचार, नूतन प्रबन्ध
रचना, साहित्य-सर्जन, संगीत शिक्षण-पद्धति ।

सहायक ग्रंथ-सूची

143-144

॥ ॐ बृहस्पतये नमः ॥

विषय-प्रवेश

संगीत को यदि मनुष्य की एक मौलिक प्रवृत्ति कहा जाए तो अनुचित न होगा। नितान्त अवोध बालक, पशु-पक्षी यहां तक कि समस्त जड़ व चेतन पदार्थ स्वाभाविक रूप से संगीत से प्रभावित होते हैं। बालक धीरे-धीरे समझदार होने पर अपने आप बिना सिखाए कुछ गुनगुनाने लग जाते हैं। यही संगीत अपने विशुद्ध मौलिक रूप में धीरे-धीरे बढ़कर लोक संगीत का रूप धारण कर लेता है। सभ्यता के बढ़ते हुए चरणों में जब विद्या, बुद्धि और ज्ञानार्जन की एक अच्छी स्थिति आ जाती है तब लोक में प्रचलित विविध भावात्मक प्रवृत्तियों को कला की संज्ञा देकर उनके वैज्ञानिक रूप-विधान और अध्ययन का आरंभ होता है। इसी तथ्य के कारण संगीत के अभिजात पक्ष का विधान भी हुआ। सभ्यता के आरम्भ में वैदिक संगीत की जो अनेकमुखी लोकधाराएं प्रचलित थीं उन्हें सबसे पहले भरतमुनि ने शास्त्रीय दृष्टि से संगठित करके संगीत शास्त्र की रचना की। भरत मुनि के बाद अनेक स्वनामधन्य आचार्यों ने इस कला का विश्लेषण और व्याख्यान प्रस्तुत किया। पाश्चात्य विद्वानों ने भी ललित-कलाओं के रूप में संगीत को मान्यता दी है और उसे काव्य-कला के बाद महत्त्व के दूसरे स्थान की अधिकारिणी ललितकला कहा है। परन्तु काव्यकला की अपेक्षा संगीत कला को निश्चित रूप से प्रथम स्थान मिलना चाहिए। काव्य का अनुशीलन केवल सहृदय व्यक्ति ही कर पाते हैं। यह सहृदयता धीरे-धीरे शिक्षा और अभ्यास से आती है। इस सीमा के कारण काव्य का प्रभाव-क्षेत्र बहुत कम हो जाता है जबकि संगीत का प्रभाव-क्षेत्र अनन्त और अमित होता है। यह सार्वकालिक और सार्वभौम है। संसार के किसी भी देश में, किसी भी काल में यदि देखा जाए तो सभ्य और असभ्य सभी मानव-जातियों में किसी-न-किसी रूप में संगीत अवश्य रहा है। पशु-पक्षियों, वनस्पति और प्रकृति के मूल तत्त्वों पर भी संगीत के प्रभाव के दृश्य समय-समय पर देखने को मिले हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है भारतवर्ष में संगीत को वैज्ञानिक आधार पर नियोजित किया गया और उसके शास्त्रीय पक्ष को नियुक्त किया गया। संगीत सदा एक विकासशील कला के रूप में रहा है और इसके फलस्वरूप इसमें नये-नये रूप जुड़ते रहे हैं। समय-समय पर होने वाले आचार्यों ने अपने निरूपण में इन सब

का समावेश किया और शास्त्र के आयाम में वृद्धि होती रही। चूँकि संगीत, सभ्यता और संस्कृति एक परम उदात्त उपलब्धि है इसलिए समय-समय पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रभाव भी इस पर पड़ते रहे हैं और उनके अनुसार प्रयोग और विवेचन भी बढ़ते रहे हैं। इन समस्त उपलब्धियों का यथोचित ज्ञान प्राप्त करते रहना नितान्त आवश्यक बात है।

संगीत विषयक अनुसंधान की आवश्यकता

विशेषकर आज जबकि संगीत का प्रचार व प्रसार बहुत हो गया है, इस बात की आवश्यकता और भी अधिक हो जाती है। इस युग में इस कला को समाज में उचित सम्मान मिला हुआ है। यहां तक कि शिक्षा-संस्थाओं में भी यह एक सामान्य अध्ययन का विषय बन गया है।

भारतवर्ष सदा से अपनी संस्कृति के लिए विश्वविख्यात है। सैकड़ों वर्ष पूर्व का इतिहास भी हमारी विभिन्न कलाओं के सम्मान का गुणगान करता है। प्राचीन काल में संगीत कला का सम्बन्ध पूर्णतया धर्म के साथ जुड़ा हुआ था। सर्वप्रथम ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' भरतमुनि द्वारा लगभग पांचवीं शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईस्वी के बीच लिखा गया जिसके 28वें से 36वें तक अध्याय संगीत पर लिखे गए हैं। भरतमुनि ने इन अध्यायों में संगीत के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन्हीं सिद्धान्तों पर टीकाएं या परिवर्धन मूलक व्याख्याएं अनेक विद्वानों द्वारा समय-समय पर लिखी गईं। जैसे मतङ्ग, अभिनवगुप्त और शाङ्गदेव आदि।

भारत की राजनैतिक सीमाएं भी सदा बदलती रही हैं। शासकों की रुचि के अनुसार कलाकारों और विद्वानों ने भी अपने-अपने ग्रंथों में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। धीरे-धीरे हिन्दू साम्राज्य का लोप होता गया और विदेशी अपने कदम भारत में जमाने लगे।

तेरहवीं शताब्दी के बाद जब सम्पूर्ण भारत में विदेशी राज्य फैल गया था, संगीत के विद्वानों ने अपने-अपने ग्रंथ छिपाकर रखे और विद्या के रहस्य विदेशियों को बताने से इनकार करने लगे, क्योंकि भारतीय विद्वानों के लिए उनकी विद्या ही पूजा की वस्तु थी। अतः वे मुसलमानों के हाथ अपनी विद्या बेचकर उसे कलुषित करना नहीं चाहते थे। इसी कारण धीरे-धीरे उस युग से ही ग्रंथ अस्पष्ट होते चले गए।

वर्तमान शताब्दी में अंग्रेजों के आने के बाद एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का उदय हुआ। इसमें अध्ययन की पाश्चात्य पद्धतियां चल पड़ीं और उनके अन्तर्गत इतिहास, तुलना और आलोचना के क्षेत्र सामने आये। इस पद्धति में यह सुविधा खूब मिलती रही है कि मूल-ग्रन्थों को भली प्रकार गुच्छों से समझे बिना सतही जानकारी के आधार पर अध्ययन के आडंबर को पूरा मान लिया जाये। इस पद्धति

से सीखे हुए अनेक भारतीय विद्वान अमरातीय दृष्टिकोण की आधारभूमि पर खड़े होकर मनमाना प्रलाप करने अगे । प्राचीन आचार्यों को सही रूप में समझना उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात थी । वे आचार्यों के प्राचीन सिद्धांतों को भ्रामक और गलत बताने का दुःसाहस भी करने लगे और मनमाने सिद्धांत बनाने लगे । ऐसे लोगों को ही लक्ष्य करके भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में बहुत सही भविष्य-वाणी इस रूप में की थी—

भविष्यति युगे प्रायो भविष्यन्त्यबुधा नराः ।

ये चापि ह भविष्यन्ति तेऽप्यल्पश्रुतबुद्धयः ॥

—नाट्यशास्त्र

अर्थात् भावी युग में मनुष्य प्रायः अबुध होंगे, जो होंगे भी वे अल्पश्रुत होंगे ।¹ कारण प्राचीन काल के संगीत ग्रंथ प्रमुखतः संस्कृत भाषा में होने से आजकल की पीढ़ी को बोधगम्य नहीं है । संस्कृत भाषा के ज्ञान का अभाव इसका कारण है । इस भाषा को सीखने की रुचि बहुत कम होती जा रही है । इसी कारण प्रमुख प्राचीन ग्रंथों को पढ़ने की इच्छा भी लोगों में नहीं है । अतः उन ग्रंथों का मूल्यांकन किस प्रकार संभव हैं ?

सौभाग्य से इस युग में भी कुछ ऐसे विद्वान हुए हैं जिन्होंने अत्यन्त योग्यता, परिश्रम और समुचित तैयारी के साथ प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया और उनका सच्चे अर्थों में उद्धार किया । सही बात को जानकर भारतीय और पाश्चात्य पद्धतियों का समन्वय करके अनुसंधान के कार्य में जुटा जाए । अनुसंधान की पूरी शोध-प्रक्रिया (Methodology) को जिसमें इतिहास, तुलना, पाठालोचन आलोचना, लेखन-प्रणाली आदि सभी बातें आ जाती हैं, का उपयोग किया जाना चाहिए ।

भारतीय संगीत एक अत्यन्त विशाल और व्यापक विषय है । इसके एक-एक अंग पर किसी प्रकार का वैज्ञानिक शोध किया जाना चाहिए, इसके लिए अनेक जिज्ञासु और ईमानदार साधकों की आवश्यकता है । प्रस्तुत प्रबंध-रचना का संकल्प इसी दिशा में उठाया हुआ एक साधारण कदम है ।

संगीत को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां

भौगोलिक परिस्थितियां

भारतवर्ष एक प्राचीन देश है, यहां की सभ्यता और संस्कृति भी ग्रीक व चीन देशों के समान पुरातन है । किसी देश की संस्कृति का मूल्यांकन वहां की कलाओं के विकास से किया जाता है । अतः भारत की सभी कलाओं के अवशेष यहां की

1. भरत का संगीत-सिद्धान्त—आचार्य बृहस्पति, पृ० 21 ।

सभ्यता का परिचय देते हैं। एक तरफ जहां खजुराहो, भुवनेश्वर, एलोरा की गुफाएं तथा दक्षिण भारत के मंदिर भारत की उच्च शिल्पकला का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी तरफ ऐतिहासिक इमारतें जो देश के कोने-कोने में बिखरी हुई हैं, यहां के शासकों की कला-प्रियता का परिचय देती हैं। जब ये निर्जीव कलाएं भारत के भूतकाल की याद दिलाती हैं तो संगीत जैसी सजीव कला किस प्रकार अछूती रह सकती है।

भारतीय संगीत अति प्राचीन है जिसका उल्लेख हमें वैदिक और पौराणिक ग्रंथों में प्राप्त होता है। उस युग में वेदों का पाठ भी सस्वर किया जाता था और वह आज भी उसी प्रकार हो रहा है। वैदिक काल हिन्दू सभ्यता का उत्कर्ष काल था। आरम्भ में केवल तीन स्वरों में ही सामवेद का गायन होता था, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। बाद में इन स्वरों की संख्या में वृद्धि हो गई और सात स्वरों का प्रयोग होने लगा।

किसी भी देश की प्राकृतिक परिस्थितियां वहां के इतिहास को प्रभावित करती हैं। इसकी भौगोलिक सीमाएं भारत को अन्य देशों से अलग कर देती हैं। उत्तर में हिमालय पर्वत-मालाओं से घिरा है और दक्षिण में हिन्द महासागर से। पूर्व में जटिल पर्वत श्रेणियां फैली हैं जबकि पश्चिम में पर्वतों पर दरों की स्थिति से विदेशियों का आवागमन प्राचीन काल में बराबर होता रहा है। परिणामस्वरूप विदेशी हमारी संस्कृति से परिचित होते गए। ईरान और मध्य एशिया की जातियां इन्हीं उत्तर-पश्चिम दरों से भारतवर्ष में आती रहीं और अपने रहन-सहन व खान-पान का प्रभाव हमारे देशवासियों पर डालती रहीं।

भारत के पश्चिम में बसे ईरान देश का संगीत इन्हीं विदेशियों के द्वारा हमारे देश में आया। उत्तर भारत पश्चिम सीमा के निकटवर्ती होने से सबसे पहले प्रभावित हुआ।

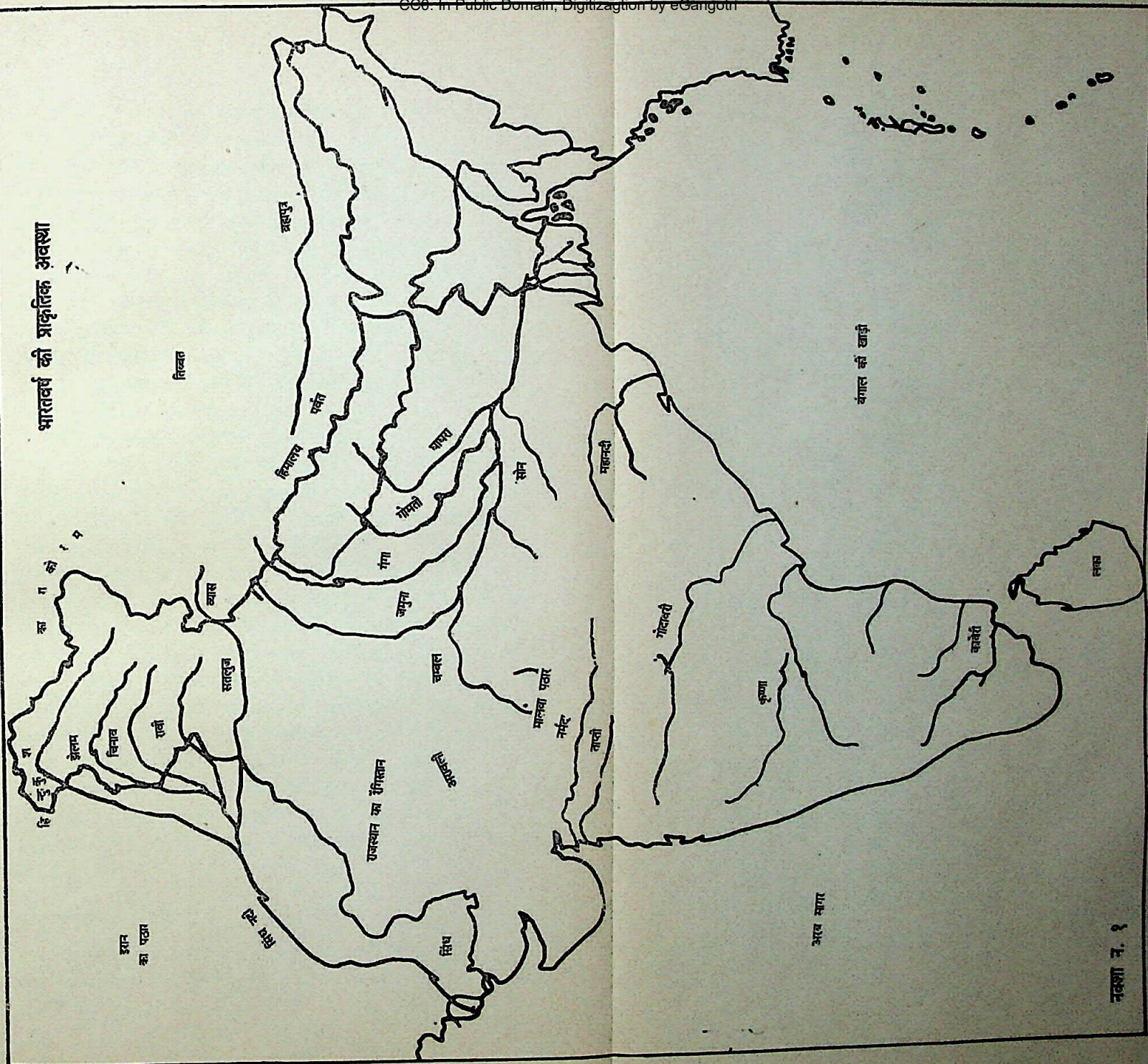
भारतवर्ष प्राकृतिक धरातल की दृष्टि से निम्न चार भागों में विभाजित है—

1. उत्तर में हिमालय पर्वत और उसकी श्रेणियां
2. गंगा-जमुना और सिन्ध का मैदान
3. दक्षिणी भारत का पठारी धरातल
4. दक्षिण के तटीय प्रदेश।

(देखिए, चित्र 1)

उत्तर भारत का मैदान जो पंजाब से बंगाल तक फैला है, देश का प्रमुख भाग है। गंगा-जमुना, सिंध व उनकी सहायक नदियों से बना हुआ यह मैदान प्राचीन काल से सभ्यता का केन्द्र बना हुआ है। इन नदियों के तटों पर देश के प्रसिद्ध नगर आबाद हुए हैं जो शिक्षा, कला व धर्म के कारण प्रसिद्ध हुए। भारत के सभी धर्मों का उदय और विकास इसी स्थल पर हुआ है।

भारतवर्ष की प्राकृतिक अवस्था



उत्तर का मैदान बहुत उपजाऊ होने से कृषि सदा से यहां का प्रमुख उद्यम रही है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं का सम्बन्ध हमेशा नदियों से रहा है, अतः संगीत कला का विकास पहले उत्तर भारत में ही हुआ होगा। धार्मिक दृष्टिकोण से भी उत्तर भारत प्रमुख क्षेत्र था। हिन्दुओं का साम्राज्य दसवीं शताब्दी तक खूब फलता रहा। इससे कुछ वर्ष पूर्व यहां मौर्य शासन की स्थापना हुई थी जिसे भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा गया है, उस समय देश धनधान्य से पूर्ण था और कला व संस्कृति अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी। इस युग के श्रेष्ठ ग्रंथों, प्रसिद्ध विद्वानों तथा कलाकारों के नाम आज भी अमर हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी में पश्चिमोत्तर सीमा से मुसलमानों का प्रवेश आरम्भ हो गया था। इन विदेशियों का प्रमुख लक्ष हिन्दू धर्म को नष्ट करना था। धीरे-धीरे यवनों का आवागमन बढ़ता चला गया और बारहवीं शताब्दी में दिल्ली नगरी विदेशी शासकों की प्रमुख केन्द्र बन गई।

संगीत के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि देश के प्राकृतिक घरातल अर्थात् पहाड़, नदियां, मैदान व समुद्र मनुष्य के लिए सहायक और बाधक दोनों ही होते हैं। सहायक इस रूप में कि दुश्मनों के आक्रमण के समय उत्तर भारत के विद्वान व कलाकार अपने प्राणों की रक्षा के लिए दक्षिणी भारत भागकर आ गए ताकि उनके ग्रंथ व उनकी कला दुश्मनों के स्पर्श से दूषित न हो जाएं। इसी कारण कश्मीर के विद्वान पं० शाङ्गदेव के पूर्वजों ने दक्षिण भारत में आकर शरण ली थी। भारतवर्ष जलवायु की दृष्टि से मानसून प्रदेश कहलाता है, जहां वर्ष में तीन प्रमुख ऋतुएं होती हैं—ग्रीष्म, शिशिर तथा वर्षाकाल। जलवायु का प्रभाव प्राकृतिक घरातल पर पड़ता है। अतः ऋतुओं के अनुसार जिस प्रकार धरती का रूप निरंतर परिवर्तित होता है, उसी प्रकार मनुष्य की मनोदशा भी प्रभावित होती है। प्रत्येक कला पर ऋतुओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ऋतुओं के अनुसार कवि और गायक अपनी रचनाएं करते हैं। मल्हार रागों का गायन वर्षाकाल में, वसन्त और बहार रागों का गायन वसन्त ऋतु में होता है। यहां तक कि दिन-रात के 24 घंटों के लिए सभी रागों का नियमानुसार गानन-वादन का समय निर्धारित किया गया है। कलाकार अपने भावों का प्रदर्शन ऋतुओं के अनुसार करता है उसी प्रकार स्वरो का उतार-चढ़ाव भी उस भाव व रस के प्रदर्शन में सहायक होते हैं।

राजनैतिक परिस्थितियां

इतिहास से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक देश की राजनैतिक सीमाएं परिवर्तनशील हैं। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का चित्र प्रसिद्ध लेखक ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में निम्न है—

“प्राचीन भारत का असली इतिहास ई० पू० 600 से प्रारम्भ होता है और हर्षवर्धन की मृत्यु के साथ 647 ई० में समाप्त हो जाता है। यह 1200 वर्ष का समय महत्वपूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण है। इस काल में हमारी सभ्यता का विकास हुआ और भारत के दो-बड़े धर्मों (जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म) का अभ्युदय हुआ। इस काल में विदेशियों के आगमन से यहां की आबादी में एक नया रक्त मिल गया। यूनानियों के साथ भारतीयों का सम्पर्क हुआ जिसके कारण कलाकौशल और संस्कृति के नये विचारों का समावेश हुआ। कला और संस्कृति का उत्तरोत्तर अधिक विकास होता रहा और अनेक बड़े-बड़े ग्रंथों की रचना हुई।”¹

दशवीं शताब्दी तक हिन्दुओं का साम्राज्य पूरे देश में फैला हुआ था। धीरे-धीरे परस्पर फूट पड़ जाने से हिन्दू साम्राज्यों की नींव कमजोर हो गई और इसका लाभ विदेशियों ने उठाया। दुश्मनों ने आक्रमण किए और देश की उत्तर-पश्चिम सीमा की तरफ से उनका प्रवेश होता रहा।

भारतीय सभ्यता का विकास

प्राचीन काल में धर्म और कला का परस्पर घनिष्ठ सम्बंध था। राज्य की ओर से कलाकारों व विद्वानों को बहुत प्रोत्साहन प्राप्त होता था। स्त्रियों को भी उतना ही आदर मिलता था क्योंकि वे भी कला और विद्वता में पुरुषों की बराबरी में रहती थीं। राज्य का काम संस्कृत भाषा द्वारा होता था। भारतवासी धर्म-प्रचार तथा व्यापार हेतु विदेश जाते थे। देश के प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद विदेशी भाषाओं में हुआ जिससे भारतीय विद्या का प्रसार दूर-दूर तक विदेशों में हो गया। इस काल में राजपूत राजा भी विद्या-प्रेमी थे और विद्वानों को राजाश्रय देते थे। जैसे मालवा के परमार अपनी उदारता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सभी कलाओं को तथा विद्वानों को संरक्षण दिया। सन् 974 ई० में मालवा का शासक मुंज हुआ जो स्वयं विद्वान था और राज्य के विद्वानों की सहायता करता था। उसी प्रकार 1010 ई० में मुंज का भतीजा भोज भी प्रतिभाशाली शासक था। वह स्वयं अनेक विद्याओं का ज्ञाता था। उसने एक संस्कृत विद्यालय ‘सरस्वती-कण्ठाभरण’ नाम से धारा नगरी में स्थापित किया। विद्यालय की प्रस्तर-शिलाओं पर विविध-विषयों के ग्रंथों को खुदवाया। उसका ध्येय ही यह था कि विद्या और संस्कृति का देश में प्रसार हो।

उसी प्रकार बंगाल के शासक पाल राजा और सेन वंश के शासकों ने ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में ललित कलाओं को बहुत प्रोत्साहन दिया। इनके शासन-काल में अनेक दार्शनिक ग्रंथों की भी रचना हुई।

1. भारतवर्ष का इतिहास, पृ० 41।

हिन्दू-धर्म और बौद्ध धर्म में प्राचीन काल से संघर्ष चला आ रहा था। किन्तु मुसलमानों के आगमन से पूर्व मौर्य-काल और गुप्त साम्राज्य में हिन्दू धर्म पुनः प्रबल हो गया। यथार्थ में देखा जाये तो हिन्दू धर्म कभी भी निष्प्राण नहीं हुआ। जिसके स्मरण-चिह्न मन्दिरों के रूप में अभी तक विद्यमान हैं।

“जैसे भारत का भुवनेश्वर मन्दिर जिसका निर्माण ईसा की सातवीं शताब्दी में हुआ था, बुन्देलखण्ड में खजुराहो का मन्दिर और उड़ीसा में पुरी का मन्दिर इस काल के सर्वाधिक प्रसिद्ध मन्दिर हैं। दक्षिण भारत में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। हिन्दू शिल्प कला में हिन्दुओं की धार्मिक भावना को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। हिन्दुओं के लिए तो सारा जीवन ही धर्म की क्रीड़ा भूमि है। हिन्दू धर्म के उत्थान के फलस्वरूप इस युग में धार्मिक और लौकिक साहित्य का सृजन बहुत बड़ी मात्रा में हुआ। अनेक दर्शन-ग्रन्थों की रचना हुई जैसे, भगवद्गीता, उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों पर शंकराचार्य की टीकाएं लिखी गईं। इस काल के नाटककारों में ‘मालती-माधव’ ‘महावीर चरित’, और ‘उत्तर रामचरित’ के रचयिता भवभूति जो ईसा की आठवीं शताब्दी में हुए, ‘मुद्राराक्षस’ के लेखक विशाखदत्त, ‘वेणीसंहार’ के कर्ता भट्टनारायण (800 ई०), ‘कर्पूर मंजरी’ आदि के प्रणेता राजशेखर जिसका रचना-काल दसवीं शताब्दी ईसवी का प्रारम्भिक भाग है, विशेष उल्लेखनीय हैं।”¹

माघ का ‘शिशुपाल वध’ महाकाव्य इस काल की प्रसिद्ध काव्य-रचना है। दूसरा महाकाव्य श्री हर्ष का ‘नैषध चरित’ है। कुछ ऐतिहासिक काव्य भी लिखे गए जिसमें धारानरेश के राजकीय पद्मगुप्त का ‘नवसहस्रांशु चरित’ और विल्हण द्वारा लिखित ‘विक्रमांक चरित’ बहुत प्रसिद्ध हुए।

“इस काल के पद्यबद्ध ऐतिहासिक ग्रंथों में सबसे प्रसिद्ध कल्हण की ‘राजतरंगिणी’ है, जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी के मध्य में हुई। कल्हण कश्मीर का रहने वाला था। वह उच्च शिक्षित होने के साथ ही अपने देश की राजनीति में भी भाग लेता था और देश की दशा से पूर्ण परिचित था। उन्होंने इस ग्रंथ में काश्मीर का पूर्ण इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कल्हण केवल इतिहासकार ही नहीं था, वह कवि भी था। इसलिए उसने यथासंभव कलात्मक ढंग से घटनाओं का वर्णन किया है।”²

इस काल के सबसे प्रसिद्ध गीति-काव्य के लेखक जयदेव ने ‘गीत-गोविन्द’ की रचना बारहवीं शताब्दी में की है। इस प्रकार मुसलमानों के प्रवेश से पूर्व का भारत उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक विद्वानों से भरपूर था

1. मध्ययुग का इतिहास—ईश्वरी प्रसाद, पृ० 30-31।

2. वही, पृ० 32-33।

जिन्होंने विश्व को दर्शन, साहित्य, तथा अन्य शास्त्रों पर ग्रंथों के भंडार की निधि-प्रदान कर दी।

भारतवर्ष का संवन्ध सबसे पहले अरब देशों से तटवर्ती व्यापार के कारण सहस्रों वर्षों पूर्व से प्रारम्भ हुआ। 712 ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया। बहुत से अरब सैनिक भारतीय नारियों से विवाह करके भारत में ही बस गये। धीरे-धीरे मुसलमान अपने धर्म का प्रचार करने लगे। “हिन्दू गायकों, शिल्पियों, दार्शनिकों और विद्वानों ने अरबों को अत्यंत प्रभावित किया। बगदाद के शासकों ने भारतीय विद्याओं के अध्ययन के लिए अरबों को प्रोत्साहित किया।”¹

दसवीं शताब्दी में सुवुक्तगीन ने भारत पर दो आक्रमण किये। उसके मृत्यु-परांत उसके पुत्र महमूद गजनवी ने ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर सत्रह बार आक्रमण किए। विदेशी भारत को ‘सोने की चिड़िया’ के नाम से पुकारते थे क्योंकि भारत सदा से धनधान्य से पूर्ण एक वैभवशाली देश विख्यात रहा है, अतएव दुश्मनों की आंखें इस देश पर लगी रहती थीं। आंतरिक राजनैतिक दशा बिगड़ जाने से हिन्दू साम्राज्य बिखर गए। इसी कारण महमूद गजनवी को यहां की विशाल सम्पत्ति लूटने में सफलता प्राप्त हुई। अलबरूनी नामक विद्वान महमूद गजनवी के साथ भारत आया था, उसने हिन्दुओं को अभिमानी कहा और ये लोग मुसलमानों को म्लेच्छ कहकर अपने समाज से दूर रखते थे।

बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दिल्ली मुसलमानों का केन्द्र बन गई और देश में इस्लाम धर्म का बड़े वेग से प्रचार होने लगा। कुछ लोगों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया, जबकि कुछ लोगों ने स्वार्थलाभ के लालच में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। मुसलमान सन्त जिन्हें सूफी कहते हैं, इन्होंने इस्लाम धर्म के प्रसार में बहुत योगदान दिया। अजमेर के मुईनुद्दीन चिश्ती, पाकापाटन के फरीदुद्दीन, दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया, नासिरुद्दीन चिराग-ए-दिल्ली और दक्खिन के गेसू दराज के नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये सूफी जनता में भगवान के प्रेम और आराधना के तत्त्व का प्रचार करके हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भाव दूर करने का प्रयत्न करते थे।

“यह ऐतिहासिक सत्य है कि जहां-जहां भारत में मुस्लिम आक्रांता आये वहां-वहां सूफी फकीर पहले से ही विद्यमान थे। आक्रांताओं की सेना के साथ भी आलिम और सूफी ही रहा करते थे।”²

13वीं और 14वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में संगीत

-
1. मुसलमान और भारतीय संगीत—आचार्य बृहस्पति, पृ० 12।
 2. वही पृ० 20।

का पुनः उत्कर्ष हुआ। इसके दरबार में अमीर खुसरो ने उच्च सम्मान प्राप्त किया। खुसरो ने संगीत के क्षेत्र में एक क्रांति मचा दी। वह स्वयं श्रेष्ठ कवि और संगीतज्ञ था। उसने भारतीय संगीत की आत्मा को पहचाना और सीखने का प्रयत्न किया। अमीर खुसरो ने हजारों कविताएं ब्रज भाषा में लिखी हैं। उत्तर भारतीय संगीत में नया मोड़ इसी समय से आया है।

दक्षिणी भारत में इसी समय सबसे बड़ा विद्वान पं० शाङ्गदेव था जिसने 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रंथ संगीत जगत के लिए बहुमूल्य है। "खुसरो के द्वारा संगीत के इन्द्रप्रस्थ मत का पोषण और संवर्द्धन हुआ। अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के शासन को जगमगा दिया था और शेख निजामुद्दीन चिश्ती एवं शेख सक्नुद्दीन (शेख बहाउद्दीन जकरिया के पोते) ने भी अलाउद्दीन के यश का विस्तार करने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया था।"¹

"मुस्लिम शासकों के आगमन के साथ ही साथ सूफी संतों ने भी भारतवर्ष में अपने अड़्डे जमा लिये और मुस्लिम धर्म का प्रचार करने लगे। सूफियों ने यहां आकर यहां के विभिन्न भागों से परिचय प्राप्त किया, भारतीयों के आचार-विचार को समझा, भारतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त किया, हिन्दू समाज की दुर्बलताओं को समझा और जन-साधारण के मन पर अधिकार करने के लिए अपने विचारों का प्रतिपादन उस क्षेत्र की भाषा में किया, जहां इनके 'खनकाह' थे।"²

इस प्रकार पूरे देश में सूफी लोग छा गए थे। इनका सम्बन्ध राजनीति से गुप्त रूप से रहता था क्योंकि मुसलमान शासकों को भी इनसे सहायता प्राप्त होती थी। इस प्रकार धर्म और राजनीति एक-दूसरे के सहायक रहे।

सूफियों द्वारा संगीत कला का विकास भी होता रहा क्योंकि उनकी सेवा में अच्छे-अच्छे कव्वाल गायक उपस्थित होते थे, जो हिन्दी में सूफी विचारधारा के प्रतिपादक माने जाते थे, शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी संगीत के महान् आचार्य और संरक्षक थे।

मुगल साम्राज्य के विकास के साथ ही साथ सभी कलाओं को राजाश्रय प्राप्त होता गया। नये-नये ग्रंथों की रचना हुई। दरबारों में कलाकारों और विद्वानों को उच्च पद दिए गए, आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। यही कारण है कि संगीत-कला के आश्रय-दाता मुगल सम्राटों ने भारतीय संगीत को जिन्दा रखा।

-
1. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, सुलोचना बृहस्पति, पृ० 26 और 28।
 2. मुसलमान और भारतीय संगीत, आचार्य बृहस्पति, पृ० 19।

मुगल साम्राज्य का विकास और भारतीय संगीत पर उसका प्रभाव

मुगल साम्राज्य का संक्षिप्त इतिहास

सदारंग परम्परा की पृष्ठभूमि के ज्ञान के लिए मुगलों के शासन-काल के इतिहास पर दृष्टि डालना आवश्यक है। मुगल साम्राज्य का प्रारंभ सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था। इससे दो सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष में खिलजी युग में अमीर खुसरो द्वारा संगीत का विकास चरम सीमा तक पहुँच चुका था। इसी काल में 'इन्द्र-प्रस्थ-मत' या 'चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय' का जन्म हुआ था। अमीर खुसरो द्वारा इस मत की प्रतिष्ठा हुई और सारे देश में सूफियों और कव्वालों द्वारा इसका प्रचार हुआ।

अमीर खुसरो का जन्म भारत में ही हुआ था और उनकी मातृभाषा भी ब्रज भाषा थी। अतः उनको भारती होने का बहुत गर्व था और यहाँ के संगीत को उन्होंने संसार में सर्वश्रेष्ठ कहा है। खुसरो ने एक स्थान पर कहा है कि ईरानी संगीत का उन्हें अच्छा ज्ञान है। अतः उन्होंने प्रचलित भारतीय रागों को मुकाम-पद्धति में ही व्यवस्थित कर दिया। ग्राम मूच्छना सिद्धान्त के रहस्य इनको प्राप्त नहीं हो सके। किंतु नये सिद्धान्तों के मिश्रण से भारतीय संगीत में एक नवीन मोड़ आ गया। इन दो सौ वर्षों के अन्दर सभी मुस्लिम नरेशों ने संगीत-कला को प्रोत्साहित किया और राजाश्रय भी दिया।

मुगल साम्राज्य का प्रारंभ

सबसे पहला मुगल सम्राट जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर था जिसने पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध सन् 1526 में इब्राहीम लोदी को हराया और दिल्ली का साम्राज्य प्राप्त किया। बाबर वचपन से ही साहसी और कभी न निराश होने वाला व्यक्ति था। एक बहादुर सैनिक होने के साथ ही साथ वह कोमल हृदय का भी था। स्वयं कविता करता था और संगीत विद्या से उसे बहुत प्रेम था। उसने अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' लिखी जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके दरबार में अनेक कलाकार थे जिनमें शाह कुली और गुलाम शादी ने नये-नये रागों और धुनों की रचना की। शेख घूरन बाबर के अत्यन्त प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी अमीरों में थे। बदायूनी ने इन्हें अपने युग का अद्वितीय संगीत महारथी कहा है।

बाबर निजामुद्दीन चिश्ती और ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तर काकी की मजार के दर्शन करने भी जाता था। एक बार वह ग्वालियर भी गया था जहां पर एक संगीत-गोष्ठी में उसने गायकों और वादकों को सुना। इसी समय से ग्वालियर के कलाकारों का सम्पर्क मुगल साम्राज्य से प्रारंभ हो गया।

बाबर के समकालीन दक्षिण के विजय नगर दरबार में प्रसिद्ध विद्वान पं० कल्लिनाथ थे, जिन्होंने 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ की टीका लिखी। पं० शाङ्गदेव कृत इस ग्रन्थ को समझने वाला विद्वान इस युग में यही था। यह ग्रन्थ और टीका दोनों ही संस्कृत भाषा में हैं। कल्लिनाथ अपने युग में प्रचलित संगीत के लिए कहते हैं कि इस समय प्रत्येक राग 'स' से प्रारंभ किया जाता है अर्थात् मूर्च्छना पद्धति लुप्त हो गई है और मूल-सिद्धान्त चल रहा है।

हुमायूँ (1530-1556 ई०)—बाबर की मृत्यु के बाद उसका बेटा नासिरुद्दीन हुमायूँ सन् 1530 ई० में गद्दी पर बैठा। इस समय इसकी उम्र 23 वर्ष की थी। प्रारंभ में अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए वह फारस चला गया। एक ओर कुटुंब में चल रही अनबन थी तो दूसरी ओर अफगानों ने फिर से अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। शेरशाह और उसके बेटों ने 15 वर्ष तक दिल्ली में शासन किया। अंत में हुमायूँ ने हिम्मत करके अनेक युद्ध किए और दिल्ली का साम्राज्य प्राप्त किया।

संगीत-प्रेम—हुमायूँ को अपने पिता की तरह इस कला से प्रेम था। वह सोमवार और बुधवार को संगीतज्ञों का गायन सुनता था और उनका सम्मान करता था। हुमायूँ भी सूफी विचारधारा से प्रभावित था। इस कारण अनेक सूफी भक्तों को भारतीय संगीत विकसित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

1535 ई० में हुमायूँ ने बहादुरशाह गुजराती को पराजित करके माण्डो पर अधिकार किया। यहां का विख्यात गायक बैजू भी पकड़ा गया जिसने कुछ गजलों हुमायूँ को गाकर सुनाई जिससे वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने कल्लेआम बन्द करवा दिया और बैजू को पुरस्कृत करके दरबारी गायकों में सम्मान भी दिया। किंतु अवसर पाकर बैजू अपने पूर्व शासक के पास बिना बताये चले गये।

अकबर के राज्यकाल में संगीत का चरमोत्कर्ष (1556-1605 ई०)

जिस समय अकबर का जन्म हुआ था उस समय इसके पिता हुमायूँ को भारत छोड़कर फारस भागना पड़ा था। 12 वर्ष की आयु में ही अकबर को राज्यभार संभालना पड़ा। एक विशाल साम्राज्य की स्थापना अकबर की कल्पना थी। अतः शत्रुओं का दमन करने के लिए उसने चारों ओर सेनायें भेजकर विजय प्राप्त की। इस प्रकार इसके राज्य का विस्तार पश्चिमी सीमा के कन्धार से, पूर्व में आसाम

तक और उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में अहमद नगर तक हो गया। अकबर एक प्रतिभाशाली शासक ही नहीं, वरन् समाज-सुधारक भी था। उसने हिन्दू-मुसलमानों को एक सूत्र में बांधा, जाति-भेद की भावना को दूर किया। स्वयं हिन्दू राज-कुमारियों से विवाह किए जिससे उसकी चित्तवृत्ति में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया था। हिन्दू धर्म का वह हृदय से आदर करता था। शेख मुबारक, उसके बेटे फैजी और अबुल फजल जैसे विद्वान सूफियों के सम्पर्क ने अकबर को संसार का महान शासक बना दिया।

अकबर के राज्यकाल में भारत की सभी कलाओं का उत्कर्ष हुआ जिससे कलाकारों और विद्वानों को दरबार में उच्च पद व सम्मान प्राप्त हुआ। विद्या और कला प्रेमी शासक के दरबार में नवरत्न थे जिसमें तानसेन का नाम अग्रणी था। तानसेन अपने विनम्र और सरल स्वभाव के कारण अकबरी दरबार के कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ थे, ऐसा अबुल फजल का कहना है। तानसेन द्वारा रचित ध्रुवपदों में अकबर का नाम रचियता में लिखा है। अतः बादशाह ने अति प्रसन्न होकर 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि देकर तानसेन को सम्मानित किया। यह इस बात का प्रमाण है कि अकबर हिन्दुओं के प्रति उदार था और धर्म परिवर्तन के लिए किसी को बाध्य नहीं करता था। यह बात सिद्ध करती है कि तानसेन कभी मुसलमान नहीं बने। इस तथ्य को सबसे पहले सामने लाने वाले संगीत-इतिहासवेत्ता आचार्य बृहस्पति ही हैं।

'अकबरी दरबार के अन्य प्रमुख कलाकारों में रामदास, सुवहान खां, मियां चांद, विचित्र खां, वीरमण्डल खां, सरोद खां, मियां लाल, चांद खां और वीणा-वादक शहाब खां ग्वालियर के निवासी और मानसिंह परम्परा अथवा बैजू की परम्परा के अनुवर्ती थे।

अकबरी दरबार के गुणियों में अनेक व्यक्ति मशहद और हिरात जैसे स्थानों के निवासी थे, जो मुस्लिम संगीत के मर्मज्ञ थे।

अकबरी दरबार के सम्पर्क में आने वाले पंडितों के वर्ग में वे दाक्षिणात्य संगीत ग्रन्थकार भी थे, जिनकी परम्परा उस मेल-सिद्धान्त का अनुवर्तन करती थी, जिसका मूल ईरानी मुकाम-सिद्धान्त में था। पुण्डरीक विट्ठल इसी वर्ग के पंडित थे।

अकबर के दरबार में 'राग सागर' नामक ग्रन्थ का प्रणयन हुआ, जिसमें मेल पद्धति की चर्चा और राग-रागिनी के ध्यान भी हैं।¹

बादशाह स्वयं तीव्र बुद्धिवाला कुशल व्यक्ति था। विद्वानों का सत्संग प्राप्त करके वह सबको नये ग्रन्थ, नये-नये रागों को रचने के लिए प्रेरणा दिया करता था। मियां की तोड़ी राग की रचना तानसेन द्वारा इसी के दरबार में हुई है क्योंकि इस राग

1. मुसलमान और भारतीय संगीत, आचार्य बृहस्पति, पृ० 74।

का स्वरूप व नाम इससे पूर्व किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। इसके स्वर भरत और शाङ्गदेव की किसी मूर्च्छना में भी नहीं मिलते हैं।

इसके अलावा तानसेन ने बहुत से रागों की रचना की जिनके नाम आज तक लोकप्रिय हैं जैसे—मियां की सारंग, मियां की मल्लार, दरबारी कानडा, आदि। अन्य कलाकार रामदास ने रामदासी मल्लार, चरजू ने चरजू की मल्लार, घोंघ ने घोंघू की मल्लार और सूरदास नामक गायक ने सूरदासी मल्लार राग बनाया।

अकबरी दरबार के संगीतज्ञों को मूर्च्छना-पद्धति के सिद्धांतों का भी ज्ञान था—यह बात तानसेन के ध्रुवपदों से पता चलती है। अकबर के दरबार में शाङ्गदेव कृत संगीतरत्नाकर जैसे ग्रन्थ का मनन लोग करते थे और उन रहस्यों को भी समझते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फजल ने अपने युग के संगीत के विकास की चर्चा 'आईने अकबरी' में की है।

अकबर का राज्य-काल संगीत का स्वर्ण-युग कहा जाता है क्योंकि उसके शासन-काल में संगीत कला सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गई थी। इस युग में भक्ति रस के अनेक कवियों ने भी जन्म लिया था जिसमें संत तुलसीदास, भक्त सूरदास, भक्त मीराबाई तथा संत कबीर जैसे नाम इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

संगीत कला को वे पवित्र, पूज्य और निरन्तर साधना की वस्तु समझते थे। संगीत-कला को साधन मानकर वे ईश्वर की प्राप्ति करना चाहते थे। अकबर की शान्ति-प्रिय नीति ने इन भक्त गायकों को भी बहुत आदर दिया, उनके दर्शनों के लिए वह स्वयं जाता था। इस प्रकार अकबर के 50 वर्षों के शासन-काल में संगीत-कला का प्रसार और उत्कर्ष इतिहास के लिए स्मरणीय है।

जहांगीर (1605-1627)—इनका बाल्यकाल का नाम सलीम था। 36 वर्ष की आयु में इन्होंने अपने पिता अकबर के बाद राज्य-भार संभाला। पिता के समान ही ये कलाप्रेमी थे और विद्वानों को समुचित आदर देते थे। इनको ध्रुवपद गान, गजल और कव्वाली सुनने का शौक था। इनके दरबार में अच्छे-अच्छे गुणी और गायक रहते थे, जिसमें तानसेन के पुत्र विलास खां का नाम प्रसिद्ध है जिन्होंने विलासखानी राग की रचना की है। इनके अतिरिक्त उनके दरबार में छतर खां, खुर्रमदाद, मक्खू और हमजान जहांगीर आदि अच्छे और प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। 'जहांगीरनामा' में उनके संगीत-प्रेम का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"उसने गजल गायक शौकी को 'आनन्द खां' क उपाधि दी, उस्ताद मुहम्मद को रूपयों से तुलवाया, इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के संगीत गुरु एवं राजदूत वख्तर खां को जहांगीर ने एक मुक्तामाला और दस सहस्र हाथी दिये थे।"¹
(देखिए, चित्र 2),

1. जहांगीरनामा, पृ० 396, 399 और 439।

शाहजहां (1627-1658)—शाहजहां 1627 ई० में गद्दी पर बैठा। इसका शासनकाल मुगल इतिहास में एक भव्य युग समझा जाता है। बादशाह कट्टर मुसलमान था और इसी समय से औरंगजेब की धार्मिक नीति का प्रारंभ हुआ था।

शाहजहां भी अत्यन्त कलाप्रेमी था। इसका जीवित प्रमाण ताजमहल है। वह स्वयं रसिक था और संगीत-कला का प्रेमी भी। प्रतिदिन रात्रि के समय अपने परिवार के साथ अंतःपुर में वह संगीत सुनता था। इसके दरबार में भी अनेक संगीतज्ञों को आश्रय प्राप्त था। जिसमें सर्वश्रेष्ठ कलाकार लाल खां थे जिन्हें बादशाह ने 1630 ई० में 'गुनसमुन्दर' की उपाधि दी थी। लाल खां तानसेन के पुत्र विलास खां के दामाद थे। इन लाल खां के पुत्र खुशहाल खां और विसराम खां थे इन्हें भी शाहजहां का आश्रय प्राप्त हुआ था। किशन खां, रंग खां और जगन्नाथ कवि भी शाही दरबार के आश्रित थे।

संगीत क्षेत्र के कार्य—शाहजहां ने सहस्र ध्रुवपदों का एक संग्रह करवाया जो उस समय प्रचलित थे और वख्शू की कृति बताये जाते हैं। यही संग्रह 'सहस्र रस' के नाम से संगीत नाटक एकेडेमी दिल्ली से प्रकाशित हो चुका है जिसका सम्पादन वाराणसी विश्वविद्यालय की विदुषी डॉ० प्रेमलता शर्मा जी ने किया है। इस पुस्तक का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत है।

शाहजहां कलाकारों का बहुत आदर करता था। एक बार दैरंग खां और लाल खां को बादशाह ने चांदी से तुलवाया और धन देकर पुरस्कृत भी किया।

औरंगजेब का युग (1659-1707)—औरंगजेब जब सम्राट हुआ उस समय उसकी आयु इकतालीस वर्ष की थी। उसका राज्याभिषेक 13 मई, 1659 ई० को बड़ी धूमधाम से हुआ। इसी समय उसने आलमगीर की उपाधि धारण की। उत्सव मनाये गए, प्रजा में धन बांटा गया। किन्तु फिर भी कुछ असन्तुष्ट प्रजा का सामना सम्राट को करना पड़ा। परस्पर भाई-भाई विरोधी थे। संपूर्ण राज्य अभी छिन्न-भिन्न अवस्था में था। औरंगजेब को इसी कारण कट्टर बनना पड़ा और विशेषतः कला के प्रति उसका विश्वास जाता रहा। उसने गाना-बजाना दरबार में निषेध करवा दिया था। उसके धार्मिक पक्षपात ने राज्य को बहुत हानि पहुंचाई। अकबर की नीति के विपरीत औरंगजेब ने काम किया।

औरंगजेब अपनी युवावस्था में काफी समय तक अन्तःपुर में रहा था जहां पर विलास के अनेक साधन थे। हीरावाई नाम की एक दासी संगीत कला में अति निपुण थी, वह औरंगजेब की प्रेमिका थी। बाद में यह जैनावादी बेगम के नाम से प्रसिद्ध हुई। सम्राट स्वयं उसे शराब दिया करता था। जैनावादी की मृत्यु यौवन-काल में ही हो गई थी, जिसकी कब्र आज भी औरंगाबाद में है।

औरंगजेब के शासन काल से धीरे-धीरे संगीत की स्थिति गिरती चली गई।

मुगल साम्राज्य का चरमोत्कर्ष

अकबर-शासन काल

जन्म-२३ नवंबर १५४२

राज्याभिषेक-१५५६

मृत्यु-१६०५

पुंडरीक
रागसंगार, रागमाला और राग मंजरी

कृष्ण पंडित-पुन अहोबल

संगीत पारिजात अनुमानित १५६५

रामामात्य पू.-१५६५ ग्रंथ-स्वर मेल कलानिधि

पाचखण्डों में विभाजित

क्योंकि शासन की बागडोर निर्बल शासकों के हाथ में होने से मुगल साम्राज्य का पतन होने लगा। औरंगजेब का सबसे छोटा पुत्र मुअज्जम, जिसको वह बहुत चाहता था, गद्दी पर बैठा। वह वहादुरशाह प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'रागमाला' नामक ध्रुवपद 'संग्रह' में इसके नाम से अंकित ध्रुवपद मिलते हैं। इतिहास प्रसिद्ध सदारंग भी इसकी सभा में थे।

मुहम्मदशाह रंगीला (1719-1748 ई०)—वहादुरशाह का पोता मुहम्मद-शाह 1719 ई० में गद्दी पर बैठा। यह सम्राट कूटनीतिज्ञ नहीं था अतः इसकी मूर्खता का लाभ विरोधियों ने उठाया। फलतः साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। लोग आमोद-प्रमोद में डूबे हुए थे। इसी समय फारस के बादशाह नादिरशाह ने सन् 1739 में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दी। बादशाह को जीवन के अंतिम दिनों तक युद्ध का सामना करना पड़ा।

मुहम्मदशाह संगीत-कला का अत्यन्त प्रेमी था। इसी कारण इसका नाम 'रंगीला' पड़ा। इसके समय में गायकों के दो प्रमुख वर्ग 'कलावन्त' और 'कच्चाल' थे। इसके दरबार में सदारंग, अदारंग, इच्छावरस आदि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जिन्होंने ख्याल बनाये और अपने शिष्यों को सिखाये। यद्यपि वे स्वयं ध्रुवपद गाते थे और अच्छे वीणावादक भी थे। अपनी वंदिशों में इन्होंने सम्राट का नाम मुहम्मदशाह रंगीले दिया है। ख्याल गायकी का प्रचार इसी युग में बहुत तीव्रता से हुआ।

इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना 'सितार' का आविष्कार है। सदारंग के छोटे भाई खुसरो खां ने ही इस वाद्य का प्रारंभ किया और प्रचार में लाया। इस तथ्य की जानकारी देने का श्रेय आचार्य बृहस्पति को है। "टप्पा" गायन शैली का प्रारंभ भी इसी काल में गुलामनवी द्वारा हुआ था। वह अच्छा गायक भी था और कवि भी। यह पंजाब का रहने वाला था और मियां शोरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'टप्पा' शैली अन्य शैलियों से भिन्न है। इसका गायन संक्षिप्त चंचल प्रकृति का होता है। इसके लिए गले की तैयारी की आवश्यकता है। काफी, झिझोड़ी, खंभाज और भैरवी आदि रागों में 'टप्पा' की वंदिशें विशेषतया गाई जाती हैं। अतः रंगीले का राज्यकाल शासन की दृष्टि से तो अवनति की दशा की ओर जा रहा था। जबकि संगीत के क्षेत्र में संगीतज्ञों ने नये-नये मार्गों की खोज कर डाली और ऐसी गायन-शैलियों का प्रचार कर दिया जिसने प्राचीन ध्रुवपद घमार गायन-शैली को जनता की रुचि के बाहर कर दिया। इसका कारण यह था कि इस युग का समाजवर्ग काफी रसिक था, वे कवित्त, खयाल, कच्चाली तथा नयी-नयी रचनायें सुनना पसंद करते थे। गायिकायें तथा नर्तकियां विद्वानों से विधिवत् गायन, वादन, नृत्य तथा शास्त्र की शिक्षा लिया करती थीं, अध्ययन करती थीं। उस समय नायिका-भेद को भी भली-भांति समझा जाता था।

मुगल साम्राज्य के अंतिम सम्राटों में अहमदशाह के दरबार में 'सुरभावन' और 'आलम' ध्रुवपदकार हुए। फिर 1797 ई० से शाहआलम का शासन आरंभ होता है। शाहआलम भी संगीत का बड़ा प्रेमी था और उसने स्वयं एक गेय काव्य संग्रह की रचना 'नादिरातिशाही' नाम से की थी। इस वर्ष दक्षिण के प्रसिद्ध संत संगीतज्ञ त्यागराज का जन्म हुआ।

मुगल शासन का अंतिम वादशाह बहादुरशाह 'जफर' (द्वितीय) का राज्यकाल आता है। इस समय दरबार में संगीत के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ नहीं थीं और परिणामस्वरूप दरबार में संगीत का अनुशीलन लगभग बन्द हो गया था। राज्य की दयनीय दशा के कारण दिल्ली के अधिकांश कलाकार देश की विभिन्न रियासतों में चले गए जहाँ नवाबों और राजाओं ने इन संगीतज्ञों को आश्रय दिया। अतः संगीत के क्षेत्र दिल्ली से हटकर अब रामपुर, अवध, पटियाला, हैदराबाद, बनारस आदि हो गए।

मुगलों के पतन के कारण तथा अन्य कारणों से ध्रुवपद शैली और वीन-वादन का तीव्र गति से ह्रास होता चला गया। बहादुरशाह 'जफर' एक सहृदय व्यक्ति था, वह संगीत के लिए दीवाना था, स्वयं 'जफर' उपनाम से कविताएं लिखता था। उसने कलाकारों को बहुत आदर दिया। वह एक कुशल शायर था और साथ ही उसकी वाणी में बहुत मधुरता थी। यद्यपि उसका जीवन बहुत संकट-ग्रस्त रहा, फिर भी वह संगीत द्वारा जीवन में प्रेरणा लेता रहा। जौक और गालिब जैसे कवि भी उसके दरबार में आते-जाते थे।

मुगल शासनकाल में भारतीय संगीत की प्रगति

पिछले खंड में मुगलों के साम्राज्य का आदि से अंत तक जो परिचय दिया गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी मुगल सम्राट स्वयं संगीत के बड़े रसिक, प्रेमी और उपासक थे। उनके दरबार तथा महलों में संगीत का रसास्वादन निरंतर किया जाता था। संगीत के कलाकारों और गायकों को इन सभी ने राजाश्रय भी प्रदान किया था। बाबर और हुमायूँ के शासनकाल अपेक्षाकृत अल्पकालीन थे और उनका अधिकांश समय अनेक प्रकार के भीतरी-बाहरी संघर्षों, विप्लवों का सामना करने में व्यतीत हुआ था। फलस्वरूप इन दोनों शासकों का व्यक्तिगत जीवन अस्त-व्यस्तता और दौड़धूप का था। कला का विकास तभी होता है जब जीवन बाहर और भीतर से निश्चित और सुस्थिर हो। फिर भी इन दोनों शासकों ने अपने संगीत प्रेम को पूरा किया है और संगीत का यथोचित सम्मान किया। जैसा कि बताया जा चुका है बाबर के दरबार में कई अच्छे गुणीजन सम्मान के साथ रहते थे। हुमायूँ में भी संगीत के लिए बड़ा अनुराग था और बताया जा चुका है कि उसने बैजू का गायन सुनकर अपनी सेनाओं को कल्लेआम से रोक दिया था।

मुगल शासन के पूरे इतिहास में अकबर का शासनकाल स्वर्णयुग कहा जाता है। अकबर ने साम्राज्य को विस्तार दिया और उसे मजबूती से प्रतिष्ठित भी किया। वह अपने व्यवहार में नीति-निपुण और उदार था। धार्मिक कट्टरता को दूर करके उसने सर्वधर्म समन्वय का मार्ग भी देखा और दिखाया। उसके साम्राज्य की सुस्थिरता हो जाने के कारण देश में अनेक प्रकार की कलाओं और विद्याओं का खूब विकास हुआ था। संगीत ने भी उनके दरबार में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा पायी थी। अकबर ने संगीत के लिए जो भी कुछ किया, उसका विस्तृत परिचय पिछले खण्ड में दिया जा चुका है।

अकबर के शासनकाल में संगीत को जो उत्कर्ष मिला वह अगले दोनों शासकों जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में भी ज्यों का त्यों रहा, बल्कि उत्तरोत्तर उत्कर्ष को भी प्राप्त करता रहा। अगले शासक औरंगजेब के संबंध में भी यद्यपि यह अपवाद प्रचलित है कि वह संगीत का शत्रु था परन्तु यह कहना सर्वथा सत्य नहीं है। उसने विशेष राजनैतिक कारणों से और अपनी दृष्टि से साम्राज्य का हित समझते हुए दरबार में संगीत को वर्जित कर दिया था। सम्राट बनने से पहले के उसके जीवन के इकतालीस वर्ष राजमहलों में ही व्यतीत हुए थे। वहां के रंगीन संगीतमय वातावरण ने उसे अपने में उलझाए रखा था। दरबार में उसने संगीत का निषेध सिंहासन पर बैठने के आठ वर्ष बाद ही किया था पर उसके महलों और हरम में संगीत का अनुशीलन यथावत् होता रहा था।

औरंगजेब के बाद का समय मुगल साम्राज्य के विघटन, पतन और विनाश का समय था। आगे आने वाले प्रत्येक शासक के काल में प्रभुसत्ता बराबर क्षीण होती गई और 1857 ई० में बहादुर शाह द्वितीय उपनाम 'जफर' के साथ मुगलों का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया था। इन्हीं शासकों के काल में निर्बल होती हुई प्रभुसत्ता के कारण बाहरी आक्रमण भी होने लगे थे। नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली ने प्रबल आक्रमण करके मुगल साम्राज्य की नींव को हिला दिया था। आगे चल कर जहांगीर के समय से आए हुए अंग्रेज फिरंगी व्यापारियों ने भी शासक बनने के लिए हाथ-पैर मारना आरंभ कर दिया था और 1857 ई० तक वे अपने प्रयास में सफलता प्राप्त कर चुके थे।

यद्यपि इन शासकों का काल शासन के लिए अच्छा नहीं था पर संगीत को इससे कोई विशेष हानि नहीं हुई। ये सभी बादशाह संगीत के पूर्ण प्रेमी थे और अपने दरबार में इन्होंने अनेक गुणी कलाकारों को आश्रय प्रदान किया था। इनसे प्रोत्साहन पाकर अनेक नयी प्रतिभाएं सामने आयीं और उन्होंने संगीत के इतिहास में अपने आपको पूर्णतया प्रतिष्ठित किया। आगे चलकर जब कलाकारों ने अनुभव किया कि कमजोर पड़ता हुआ शाही दरबार हमारी रक्षा और पालन-पोषण करने में असमर्थ है तब वे स्वयं अपनी इच्छाओं से हैदराबाद, पटियाला, लखनऊ, रामपुर

जैसी रियासतों में आश्रय की खोज करते हुए चले गए ।

पहले खण्ड के विवरण में इन बादशाहों के दरबार में होने वाली संगीत की प्रगति का अलग-अलग वर्णन किया जा चुका है । ऊपर यह भी बताया जा चुका है कि मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में अन्य गुणियों के साथ 'सदारंग' भी थे । भारतीय संगीत में 'सदारंग' का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वे एक आचार्य की तरह प्रतिष्ठित हैं । भारतीय संगीत में उन्होंने कुछ विशेष परम्पराओं की सृष्टि की जिनका विवेचन करना हमारे इस प्रबंध का मुख्य लक्ष्य है ।

(देखिये, चित्र 3)

सदारंग : जीवनवृत्त और कृतित्व

सदारंग का नाम नेमत खां था । इनके पिता परमोल खां और छोटे भाई खुसरो खां थे । नेमत खां का जन्म औरंगजेब के राज्यकाल में हुआ था । इनकी संगीत शिक्षा तातारी कन्वाल और वंगाली नटवे द्वारा उससे पहले हुई । इस समय औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह प्रथम (1707-12 ई०) का शासन था । जहांदारशाह और मुहम्मदशाह रंगीले का शासन काल भी इन्होंने देखा । राजनैतिक उतार-चढ़ाव का सदारंग की संगीत रचि पर कोई प्रभाव न पड़ा—ये निरन्तर अपनी कला की साधना में लगे रहे ।

मुहम्मदशाह रंगीले संगीत-रसिक सम्राट थे जिनका शासन 1719 ई० से 1748 तक रहा । ये दिनरात संगीत के रस में डूबे रहते थे, इन्हें रागरंग ने इतना मदहोश कर दिया था कि हर समय इनके दरबार में गायक, वादक और नर्तकों का जमघट लगा रहता था । सदारंग (नेमत खां) पर इनका विशेष अनुग्रह था । सम्राट को खयाल सुनने का शौक था अतः सदारंग को पन्नावाई और कमालवाई जैसी सुकण्ठी वारांगनाओं को खयाल की शिक्षा देनी पड़ी । यद्यपि उस समय खयाल-रचना और वेश्याओं को शिक्षा देने का कार्य खानदानी कलावन्त पसन्द नहीं करते थे । इसी समय से वीन और ध्रुवपद का पतन प्रारंभ हो गया ।

सदारंग : कला-साहित्य मर्मज्ञ

ध्रुवपद का स्थान खयाल ने जब ले लिया तो सदारंग ने इस शैली को सुर, भाषा व लय से सजाने-संवारने का तरीका सोचा । नेमत खां का कई विद्याओं और अनेक भाषाओं पर अधिकार था । अतः उनकी रचनाएं कविता व भाषा की दृष्टि से बड़ी प्रभावशाली थीं । यह तत्त्व वे अच्छी तरह जानने थे कि राग और ताल की अभिव्यक्ति तो वाद्य भी करते हैं, किन्तु राग और ताल के साथ भाषा के माध्यम से जो प्रभाव और आकर्षण एक गायक कर सकता है वह अत्यन्त दुर्लभ है । गायन को इसीलिए उत्तम कहा गया है कि वह स्वर, भाषा और लय की त्रिवेणी है ।

पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य

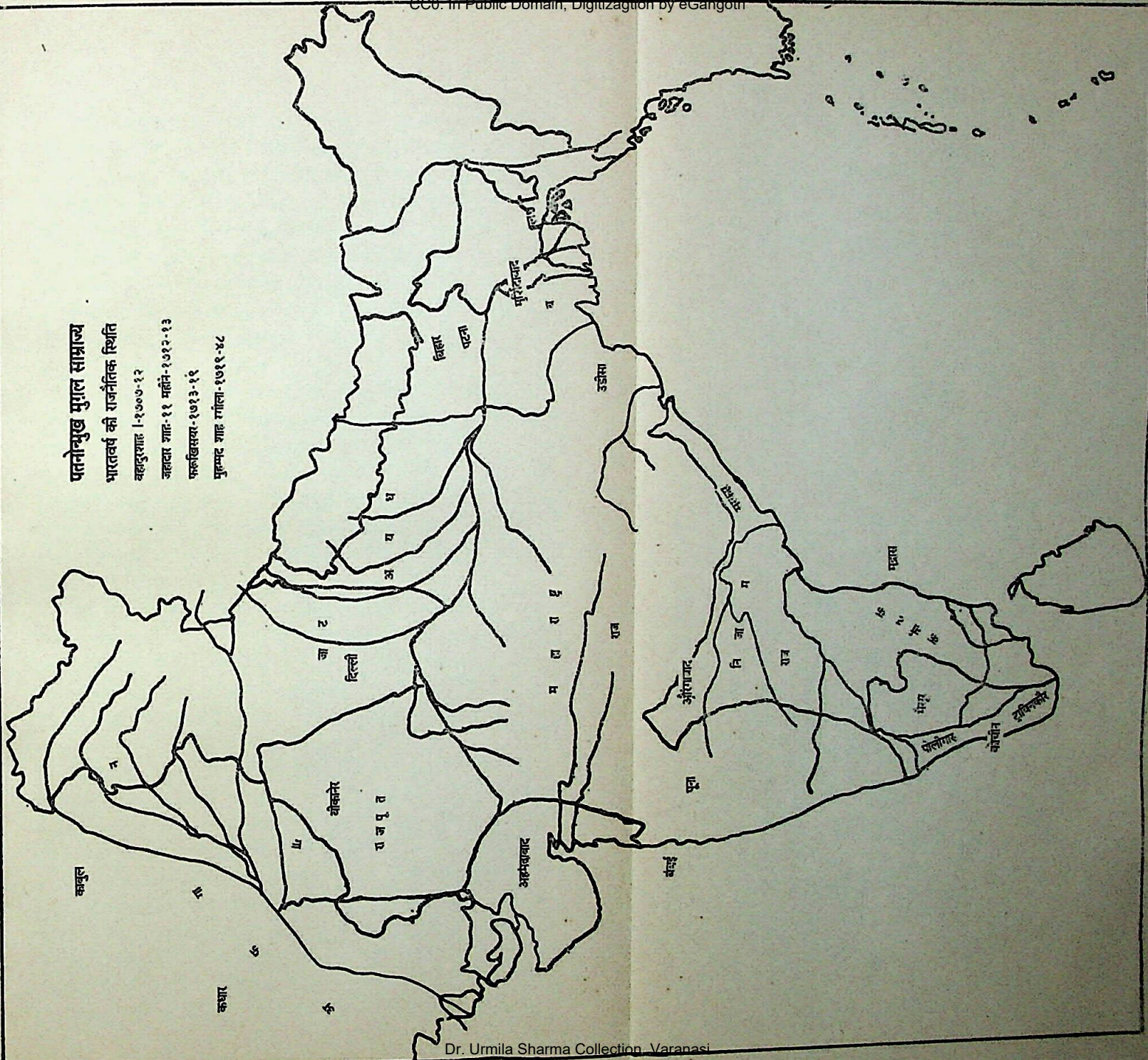
भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति

बहादुरशाह 1-१७०७-१२

जहांगीर शाह-११ महिन-१७१२-१३

फर्रुखसियर-१७१३-१९

मुहम्मद शाह गंगोला-१७१९-४८



सदारंगयुग का समाज रसिक था जो कवित्तों को समझते थे अतः खयाल और कव्वाली सुनना पसन्द करते थे। सदारंग की कृतियां साहित्यिक होती थीं जिसमें रस, भाव, नायक-नायिका भेद का दिग्दर्शन होता है। महाकवि देव जैसे साहित्य मर्मज्ञ आचार्य और सदारंग जैसे रसिक संगीतज्ञ का जहां सत्संग होता रहा हो, वहां साहित्य व संगीत के समन्वय से विलक्षण प्रतिभाओं का जन्म हुआ।

खयाल अनेक गुणों के कारण लोकप्रिय हो गया। इस समय कव्वाल वच्चों के खयालों में तानें ऐसी शोभित होती थीं जैसे मोतियों की माला और मधुर कंठ वाले गायकों की तानें आतिशबाजी की तरह प्रतीत होती थीं और छोटी-छोटी हरकतें जैसे फुलझड़ियां छूट रही हों। गायक लय से खेलते थे, उसका आनन्द लेते थे, ताल से कुश्ती नहीं करते थे।

सदारंग सूफी संतों के भी भक्त थे। वे उनकी समाधियों पर भी जाते थे। इनके समय में संगीतप्रेमी सूफी मजनून नानकशाही, शाहगुलाम मुहम्मद, शाहकमाल और शाह रहमत उल्ला प्रमुख थे। इस प्रकार सूफी संतों की समाधियों पर प्रतिवर्ष 'उर्स' होते रहे हैं जहां संगीत के कलाकार एकत्रित होते हैं। ये सूफी संत प्रायः कव्वाली के शौकीन होते थे अतः कव्वाल इनकी सेवा में उपस्थित होते रहे हैं। आज भी दिल्ली में निजामुद्दीन चिश्ती की दरगाह और अजमेर में मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर वार्षिक संगीतोत्सव कव्वाली शैली में होते हैं जिसमें पाकिस्तान के कव्वाल भी सम्मिलित होते हैं।

सदारंग कभी-कभी रईसों के घर आयोजित संगीत गोष्ठियों में भी जाते थे, जिसमें लतीफ खां रईस उनके परम मित्र थे। सदारंग अपने घर पर भी 'संगीत-सभा' आयोजित करते थे जिसमें श्रोतागण सबेरे से आना शुरू होते थे और रात भर महफिल चलती थी जो सुनने वालों से भरी रहती थी। सदारंग इसमें गाते भी थे और वीन भी बजाते थे। ऐसी संगीत सभाएं संगीत के रस की वर्षा करती थीं।

सदारंग के भाई 'खुसरो खां' भी संगीत मर्मज्ञ थे जिन्होंने सितार वाद्य का आविष्कार किया जिस पर वे सभी राग-रागिनियां अच्छी तरह बजा लेते थे। इन्होंने बहुत से न रागों का भी आविष्कार किया। सदारंग के प्रमुख शिष्यों में फीरोज खां 'अदारंग' आते हैं जो इनके शिष्य होने के साथ ही साथ दामाद भी थे। सदारंग एक श्रेष्ठ गायक और वीनकार भी थे। इन्होंने सदारंग की तरह ही खयालों और तरानों की रचना की है। एक अन्य शिष्य कासिम अली बहुत सुंदर व्यक्ति था उसकी कला भी उसी भांति मोहक थी। सदारंग की शिष्याओं में पन्नावाई विशेष थीं जिनके गाने में जादू था। यह अत्यन्त शीलवती, गुणवती और मधुरभाषिणी थीं। इन्होंने भी बहुत से नये रागों की रचना की। अन्य शिष्याओं में कमालबाई का नाम प्रसिद्ध है। मुहम्मदशाह के नाम से बनाये हुए सदारंग के

खयाल ये बहुत सुंदर रूप से गाती थीं ।

सदारंग स्वयं बहुत उदार हृदय व्यक्ति थे । वे जिस प्रकार शिक्षा देने में उदार थे उसी प्रकार गुण ग्रहण करने में भी उन्हें संकोच नहीं था । वे किसी भी व्यक्ति का शिष्य बनने में संकोच नहीं करते थे । उन्होंने प्रारंभ में नटवे से नाचना, गाना, ताल-मंजीरा बजाना भी सीखा । महाकवि देव के चरणों में बैठकर संगीत और साहित्य के सिद्धान्तों को सीखकर उस पर जीवन पर्यन्त मनन और अभ्यास किया । इसी कारण सदारंग परम्परा का गायन और वादन आज भी जीवित है । जिनको इस परम्परा की शिक्षा प्राप्त हुई है, वे ही संगीत के रहस्यों और सिद्धान्तों को जानते और समझते हैं । अतः वर्तमान युग के संगीत-जीवियों को सदारंग के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए । उन्हें उदार हृदय से शिक्षा लेनी और देनी चाहिए । संगीत और साहित्य का समन्वय हो जिससे स्वरताल और शब्द-अर्थ का महत्त्व कायम रहे । सुर, लय, भाषा का आनन्द स्वयं लेकर उसका रसास्वादन जगत को कराने की क्षमता रखें तभी संगीत का उद्धार संभव है ।

रुहेला राजवंश

रामपुर रियासत की स्थापना

मुगल सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले के पश्चात् कलाकारों को राज्याश्रय प्राप्त करने के लिए दिल्ली नगरी से बाहर जाना पड़ा। 1731 ई० में नादिरशाह ने इस भोले सम्राट पर आक्रमण कर दिया जिससे उसका मन मलीन हो गया और संगीत से उसे विरक्ति हो गई। इसी विवशता के कारण वह कला और कलाकारों की सुरक्षा नहीं कर पाया। सम्राट की मृत्यु 1748 ई० में हो गई। मुगल दरबार के कुछ कलाकार रुहेला नवाब सादुल्लाह खां के आश्रय में आ गए जिसमें फीरोज खां 'अदार्ग' और उनके शिष्य करीमसेन और मेंहदीसेन जैसे गुणी कलाकार भी थे।

रामपुर उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध मुस्लिम रियासत अठारहवीं सदी के प्रारंभ से ही विभिन्न विद्याओं और कलाओं का केन्द्र थी। यहां के नवाबों को संगीत कला से बहुत प्यार था अतः उनके द्वारा इस कला का अद्वितीय विकास हुआ। रामपुर परम्परा की नींव इन्हीं संगीत प्रेमी नवाबों द्वारा पड़ी है जिन्होंने कलाकारों को राज्याश्रय दिया। बहादुरशाह प्रथम के राज्यकाल (1707-1712 ई०) में काबुल की पहाड़ियों में स्थित 'रोह' नामक स्थान से दाऊद खां नामक पठान भारत आया। इनके पिता का नाम शाह आलम खां था और पितामह का नाम महमूद खां था। दाऊद खां बहुत बलवान, साहसी और युद्ध-प्रेमी व्यक्ति था। इसने शीघ्र ही अपनी सेना बना ली और उत्तरी प्रदेश के कुछ इलाकों पर कब्जा कर लिया, जिसमें जिला बरेली, तहसील बहेड़ी, परगना कावर के बाकौली नामक गांव था जो विशेष-तया जाटों का था। इस गांव में दाऊद खां को एक सुंदर स्वस्थ बालक मिल गया जिसे बाद में दाऊद खां ने गोद ले लिया। इसका नाम अली मुहम्मद रखा गया और ये ही भविष्य में रामपुर के नवाब बने।

(देखिये, चित्र 4)

दाऊद खां की वीरता से प्रसन्न होकर कुमायूं के राजा ने उन्हें नौकर रख लिया, परन्तु जब मुगल सम्राट की आज्ञा से केठर के प्रबन्धक मुहम्मद अजमतल्लाह ने चढ़ाई कर दी और कुमायूं नरेश को पराजित कर दिया, तब कुमायूं नरेश को संदेह हुआ कि उनके नौकर दाऊद खां ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है।

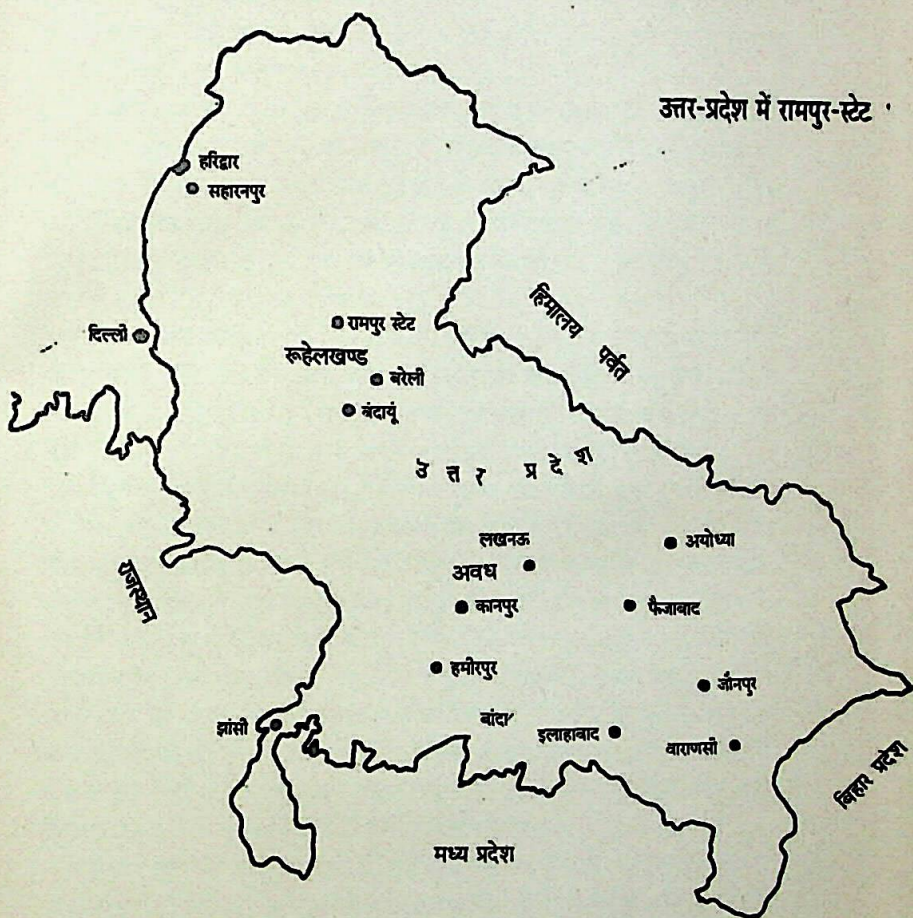
एक बार वेतन लेने के लिए दाऊद खां को कुमायूं बुलाया गया और उसी समय उसका वध करवा दिया गया। इस समय उसके पोष्य पुत्र अली मुहम्मद खां की उम्र केवल चौहद वर्ष थी।

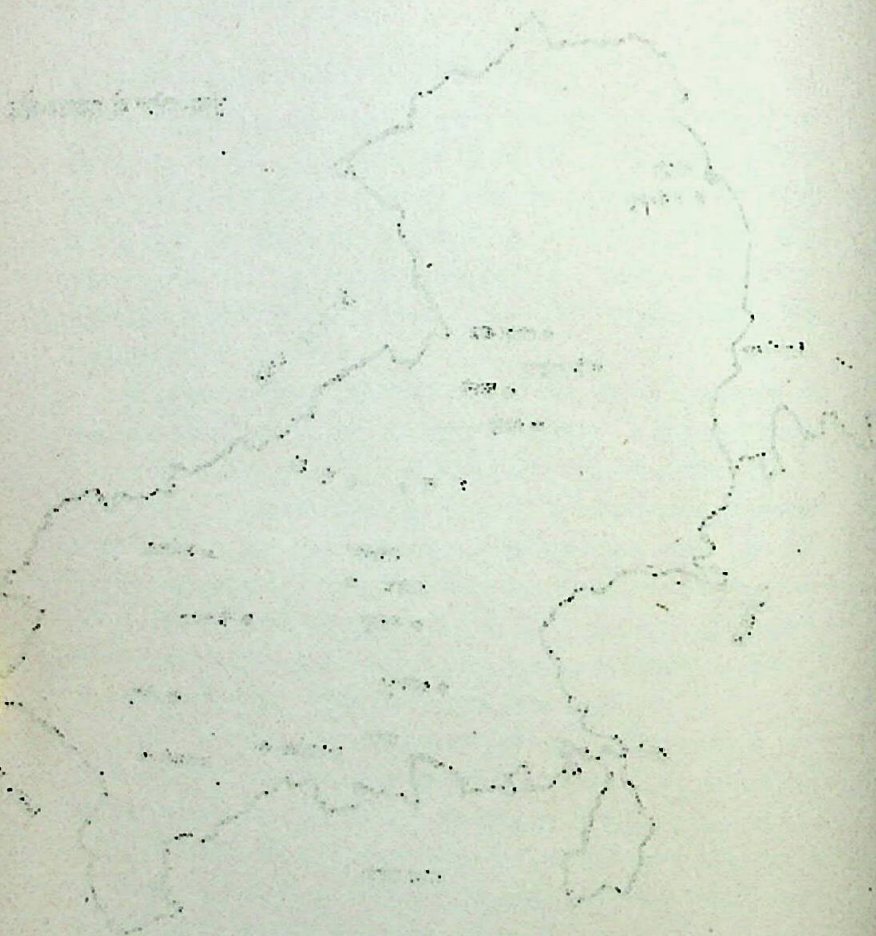
दाऊद खां के युग में दिल्ली दरबार की स्थिति

दाऊद खां के समकालीन दिल्ली के सम्राट बहादुरशाह प्रथम की सभा में एक तातारी कव्वाल, एक बंगाली नटवा और रीतिकालीन प्रसिद्ध आचार्य, संगीतज्ञ और महाकवि थे। पिछले अध्याय में हम यह बता चुके हैं कि नेमत खां सदारंग को ऐसे आचार्यों, महाकवियों और कलामर्मज्ञों का सत्संग प्राप्त था और उन्हें इनसे शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। सदारंग का नाम प्रसिद्ध वीणावादक के साथ-साथ, ध्रुवपद गायक भी हुआ। यद्यपि सहस्रों खयाल रचनाएं भी इन्होंने रंगीले नाम से की हैं।

तात्पर्य यह कि रामपुर राजवंश की स्थापना और सदारंग के प्रशिक्षण का समय एक ही था। सदारंग का काल संगीत के इतिहास के लिए स्वर्ण युग है, जिसका उल्लेख नवाब दरगाह कुली खां द्वारा लिखित एक छोटी फारसी पुस्तक में किया गया है। रामपुर के गुणियों ने दिल्ली की सदारंग परम्परा का पूर्णतया अनुकरण किया। जैसा कि पिछले अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि मुगल साम्राज्य की अवनति के कारण दिल्ली के सब कलाकार आश्रय प्राप्त करने के लिए देश की विभिन्न रियासतों में चले गए जहां के नवाबों और रईसों ने इन कलाकारों को सम्मान देकर संगीत कला की सुरक्षा की। इसमें रामपुर रियासत का नाम सबसे पहले आता है क्योंकि यह दिल्ली से निकटतम है।

दाऊद खां के पोष्य पुत्र अली मुहम्मद खां के संबंध मुगल दरबार के साथ काफी अनुकूल थे, इसी कारण इनको पंचहजारी मनसबदार का पद प्राप्त हुआ। यह सब मुगल साम्राज्य के महामंत्री कमरुद्दीन खां के प्रयत्नों से ही हुआ। किन्तु थोड़े दिनों पश्चात् कुछ लोगों की दुष्टता के परिणामस्वरूप अली मुहम्मद खां की सम्राट से अनबन हो गई। फलतः मुहम्मदशाह ने स्वयं अली मुहम्मद खां पर चढ़ाई कर दी और अली मुहम्मद खां को आंवला जिला बरेली के वनगढ़ नामक दुर्ग में आश्रय लेना पड़ा। महामंत्री कमरुद्दीन खां ने पुनः दोनों में संधि करवा दी और मुहम्मद अली खां मुहम्मदशाह के साथ दिल्ली आ गए, जहां पर उनको मुगल दरबार में सदारंग जैसे ध्रुवपदकार और वीणावादक, रसूल खां जैसे कव्वाल, भवानीदीन जैसे पखावजी अदारंग इच्छावरस जैसे कलावंत और हुसैन खां जैसे ढोलकिए, नूरबाई, पन्नाबाई, कमालबाई, रहमानबाई जैसी गायिकाएं और कलाकारों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय के मूर्धन्य सूफी ख्वाजा मीर 'दर्द' भी वहां थे जिनके सामने गवैये और कलावन्त अपनी-अपनी रचनायें परीक्षण और संशोधन के लिए प्रस्तुत





करते थे और ख्वाजामीर के दौहित्र मीर मुहम्मदी 'रंग' भी थे। बड़े-बड़े उस्ताद उनके सामने अपने कान पकड़ते थे और खाक चाटकर उनका नाम लेते थे। रामपुर राजवंश के पूर्व पुरुष अली मुहम्मद खां का इस स्थिति से प्रभावित होना स्वाभाविक था। अतः रामपुर के नवाबों में साहित्य और संगीत के प्रति रुचि जागृत करने का काम दिल्ली दरबार के सम्पर्क ने किया।

जब मुहम्मदशाह के आदेश के अनुसार नवाब अली मुहम्मद खां को सरहिंद की ओर जाना पड़ा तब वे अपने दो पुत्रों मुहम्मद अब्दुल्लाह खां और मुहम्मद फैजुल्लाह खां को अपने साथ ले गए। उनके तीसरे पुत्र मुहम्मद सादुल्लाह खां अपने और तीन भाइयों के साथ आंवले में रहे। अली मुहम्मद खां ने इस प्रयास में विजय प्राप्त की और 1750 ई० में सम्राट अहमद शाह के राज्यकाल (1748-1754 ई०) में इनकी मृत्यु हो गई।

मुगल सेना ने जब अहमदशाह अब्दाली को भगाया था, तब वह अली मुहम्मद खां के दोनों पुत्रों अब्दुल्लाह खां और फैजुल्लाह खां को अपने साथ जबर्दस्ती ले गया। किन्तु उनके पिता की मृत्यु का समाचार पाकर उन्होंने दोनों को भारत भेज दिया। पिता की मृत्यु के बाद भाइयों में पैतृक राज्य का बंटवारा हुआ।

जिस समय अलीमुहम्मद खां मुगल साम्राज्य की ओर से युद्ध करने पश्चिम की ओर गये थे, उनका पुत्र मुहम्मद सादुल्ला खां आंवले की देख-रेख कर रहा था। और जब अहमदशाह अब्दाली उसके दोनों पुत्रों को अपने साथ ले गया तब अली-मुहम्मद ने अपने पुत्र मुहम्मद सादुल्ला खां को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला इनके पगड़ी बदल भाई बन गए थे। कुछ समय के बाद सरदार लोग इनसे असन्तुष्ट हो गए और उन्होंने उझियानी, जिला बदायूं में पांच लाख रुपये की जागीर मुहम्मद अब्दुल्ला खां को और रामपुर इत्यादि स्थान जो पांच लाख रुपये की जागीर थी, मुहम्मद फैजुल्लाह खां को दे दी तथा बाकी तमाम क्षेत्र आपस में बांट लिये। मुहम्मद सादुल्ला खां को कोई प्रदेश नहीं दिया, सरदारों ने उनके लिए आठ लाख रुपये वार्षिक नियुक्त कर दिये।

नवाब मुहम्मद सादुल्ला खां : ये कुछ समय मुरादाबाद में रहे, कुछ समय के बाद आंवले से तीन कोस दूर पूर्व की ओर बरल नदी के किनारे एक प्रासाद बनवा कर रहने लगे। इनके आश्रय में फिरोज खां 'अदारंग', मेहन्दीसेन और करीमसेन जैसे कलाकार थे जो स्थायी रूप से रहने लगे। इस प्रकार रामपुर-राजवंश की दूसरी पीढ़ी ने सेनिए गुणियों को स्थायी आश्रय दिया। नवाब सादुल्ला खां की मृत्यु 1761 ई० में हुई, इस समय दिल्ली में सम्राट शाह आलम का शासन था।

नवाब मुहम्मद अब्दुल्लाह खां : पिता की मृत्यु से पूर्व अपने भाई फैजुल्लाह खां के साथ ये अब्दाली के संरक्षण में रहे थे जहां इनकी शिक्षा हुई थी। इनकी मृत्यु सांप काटने से 1767 ई० में हुई।

नवाब मुहम्मद फैजुल्लाह खां : इनको रामपुर का क्षेत्रपैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। ये रामपुर रियासत के सबसे पहले शासक हुए। इनका अधिकांश समय युद्धों में बीता। 17 जुलाई, 1794 ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

नवाब गुलाम मुहम्मद खां : नवाब फैजुल्लाह खां के दो पुत्र नवाब मुहम्मद अली खां और नवाब गुलाम मुहम्मद खां थे। मुहम्मद अली खां को राज्य पर अधिकार मिला किन्तु राज्यारोहण के चौबीसवें दिन ही सेना के अधिकारियों ने इन्हें घायल करके गुलाम मुहम्मद खां को अधिकार सौंपा और अन्त में मुहम्मद अली खां मार डाले गए। मुहम्मद अली खां के पुत्र अहमद अली खां आसफुद्दौला के दरबार में शिकायत ले गये। परिणामस्वरूप दुजोड़ा नामक स्थान पर आसफुद्दौला और अंग्रेजों की सेना से मिलकर नवाब गुलाम मुहम्मद खां से भयानक युद्ध किया।

अकबर द्वितीय के शासनकाल में नवाब गुलाम मुहम्मद खां का स्वर्गवास 1822 ई० में हुआ।

नवाब अहमद अली खां : नवाब मुहम्मद अली खां के पुत्र अहमद अली खां आसफुद्दौला के आदेश से रामपुर की गद्दी पर विठाये गये। अहमद अली खां की आयु उस समय नौ वर्ष की थी। नवाब अब्दुल्ला खां के पुत्र नवाब मुहम्मद नसरुल्लाह खां को नव वर्षीय रामपुर-नरेश का नायब नियुक्त किया गया। यह घटना 29 नवम्बर, 1794 ई० की है। नसरुल्लाह की मृत्यु के बाद 1810 ई० से अहमद अली खां ने स्वयं सब कार्यभार सम्भाला। इनको शिकार और संगीत से प्रेम था। इस समय दिल्ली में अंतिम सम्राट वहादुरशाह का शासन था। 26 जुलाई, सन् 1840 ई० में नवाब अहमद अली खां का देहान्त हो गया।

नवाब मुहम्मद सईद खां : ये नवाब गुलाम मुहम्मद खां के पुत्र थे। अहमद अली खां की मृत्यु के समय यह बदायूं में थे। उससे पहले लखनऊ और बनारस में रह चुके थे और अपना मुकदमा कलकत्ता तक ले गये थे। इसलिए अंग्रेज अफसरों की सहायता से ये 20 अगस्त, 1840 ई० में रामपुर की गद्दी पर बैठे। ये योग्य प्रबंधक थे। इन्होंने दीवानी और फौजदारी महकमों की स्थापना की। इनकी मृत्यु 1 अप्रैल, 1854 ई० में हुई।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, दिल्ली साम्राज्य की अस्थिरता के कारण कलाकारों और विद्वानों को आश्रय ढूंढने के लिए उन रियासतों में जाना पड़ा जहां उनकी कला को सम्मान प्राप्त हुआ। रामपुर रियासत से पूर्व अवध के नवाबों ने गुणियों को आश्रय दिया था इसलिए लखनऊ कला का केन्द्र बन गया था। जब नवाब वाजिद अली शाह का पतन होने लगा तब अवध के विद्वानों और गुणियों की दृष्टि रामपुर दरबार पर गयी।

नवाब यूसुफ अली खां : ये नवाब मुहम्मद सईद खां के पुत्र थे। 1857 ई० स्वतंत्रता-युद्ध में रामपुर शांत रहा। इधर-उधर से शरणार्थी रामपुर आये।

नैनीताल में अंग्रेज सुरक्षित रहे। शांति होने पर नवाब सितारे हिन्द बनाए गए और विक्टोरिया की ओर से उसकी उपाधि में 'फर्जन्दे दिल पिजीर' (लाड़ला पुत्र) शब्द पड़े। ये योग्य शासक और कुशल योद्धा थे। इनको संगीत कला से अति लगाव था और गुण परख करने की क्षमता थी। स्वयं कविता करते थे और विद्याध्ययन इनका शौक था। अपनी उर्दू कविताएं सुधार के लिए महाकवि 'भोमिन' को दिखाते थे। जब वह न रहे तो मिर्जा गालिब को दिखाने लगे। अपना उपनाम 'नाजिम' रखा था।

महाकवि ग्वाल को भी अपने दरबार में बुलाया और सात महीने उसका आतिथ्य सत्कार किया। महाकवि ग्वाल के ही समकालीन और गुरु भाई पं० दत्तराम थे जो आचार्य बृहस्पति के प्रपितामह थे। दत्तराम जी नवाब मुहम्मद सईद खां के युग से रामपुर दरबार में थे। अतः राजपंडित पं० दत्तराम जी के वे सभी गुण आचार्य बृहस्पति को संस्कार रूप में प्राप्त हुए थे।

यों तो यूसुफ अली खां के दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे, परन्तु उनमें निम्न-लिखित कलाकार विशेषतया उल्लेखनीय हैं : बहादुर हुसैन खां, अमीर खां और रहीम खां।

बहादुर हुसैन खां (जिया उद्दौला) : जीवन खां और छज्जू खां भाई थे। इनकी मृत्यु लखनऊ में स्वतंत्रता युद्ध से पूर्व हुई। छज्जू खां के तीन पुत्र प्यार खां, बासन खां और जाफर खां थे। प्यार खां ने 'सुरसिंगार' नामक वाद्य का आविष्कार किया। जाफर खां अच्छे गायक थे और अन्य भाई रवाब अच्छा बजाते थे।

जाफर खां की सन्तानों में काजिम अली खां 'अरामुद्दौला' फारसी और अरबी भी जानते थे, रवाब तो बजाते ही थे। सादिक अली खां 'राहुतुद्दौला' कहलाते थे। इनके दो भाई निसार अली और एक अन्य कोई थे।

प्यार खां के कोई सन्तान न थी। इसलिए उन्होंने अपने भांजे बहादुर हुसैन खां 'जिया उद्दौला' को गोद लेकर 'सुरसिंगार' की शिक्षा दी। प्यार खां के अन्य भाई उनके इस कार्य से इतने अप्रसन्न हुए कि प्यार खां के मरने पर उनके जनाजे तक में सम्मिलित नहीं हुए।

करमइमाम ने अपने ग्रंथ 'मअदनुलमूसिकी' में पृष्ठ 243-244 में एक घटना का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने बहादुर हुसैन खां को इल्म का छिपाने वाला कहा है। एक बार हुसैन खां सुरसिंगार बजा रहे थे। उन्होंने एक राग बजाते समय अपने दामाद अमीर खां (उमराव खां बीनकार के पुत्र) से पूछा कि तुमको इस राग की शिक्षा है या नहीं। उत्तर मिला, "नहीं"। बहादुर हुसैन खां ने अमीर खां के चचा तुराव अली खां से वही प्रश्न किया। उत्तर मिला, "पूरिया से मिलता है।" इस पर बहादुर हुसैन खां व्यंग्यपूर्वक बोले, "आपकी उस्तादी में भी फर्क नहीं आया, कहने को तो हुआ कि राग बता सके, वास्तव में इस राग की

शिक्षा हमें है आप क्या जानें।" इस पर तुराव अली खां ने बहादुर हुसेन खां को एकान्त में ले जाकर इस राग का सोज सुनाया, तो बहादुर हुसेन खां ने कहा कि ईश्वर के वास्ते लड़कों (अमीर खां) के सामने इस राग का नाम न लीजियेगा।"

वर्तमान प्रसिद्ध गुणी अलाउद्दीन मँहरवाले और हाफिज अली खां सरोदिये जैसे राष्ट्र-सम्मानित गुणियों के गुरु वजीर खां इन्हीं बहादुर हुसेन खां के दाहित्र थे।

अमीर खां : ये उमराव खां वीनकार के पुत्र थे, इन्हें बहादुर हुसेन खां की बेटी व्याही थी। वजीर खां इन्हीं के पुत्र थे। अमीर खां चित्रकला में 'मयदन् उल मूसिकी' के लेखक मुहम्मद करम इमाम के शिष्य थे। करम इमाम ने इन्हें गाने में पूर्ण निष्णात, शिक्षित, सत्संग के योग्य, निरभिमान और दोषहीन कहा है।

रहीम खां : ये अमीर खां के सहोदर थे। करम इमाम ने इनके गुणों की प्रशंसा भी अमीर खां के गुणों के समान ही की है।

यूसुफ अली खां के दरबार के इन गुणियों ने ही संगीत-संसार में रामपुर को मूर्धन्य स्थान दिलाया। 21 अप्रैल, 1865 ई० को नवाब यूसुफ अली खां का स्वर्गवास पचास वर्ष, आठ महीने पच्चीस दिन की आयु में हुआ।

नवाब कल्बे अली खां : ये यूसुफ अली खां के ज्येष्ठ पुत्र थे और पिता की मृत्यु के बाद रामपुर के नवाब बने। इनके छोटे भाई हैदर अली खां थे। कल्बे अली खां का युग विद्या और कला की दृष्टि से रामपुर-शासन का स्वर्ण युग कहा जाता है। इन्होंने अनेक इमारतें बनवाई, जामा मस्जिद, सराय, अस्तवल, हाथीखाना, गावखाना, फर्राशदाना, रामपुर का बाजार, खुशरो बाग की कोठी, दीवानी-फौजदारी कचहरी, कोठी बेनजीर इत्यादि का निर्माण भी कराया। बेनजीर का मेला भी प्रारंभ किया, जिसमें अद्भुत प्रदर्शनी होती थी।

इनके विद्या प्रेम से सन्तुष्ट होकर महाकवि ग्वाल ने इनका आश्रय लिया। पंडित दत्तराम जी और पंडित विधिचन्द्र जैसे महापंडित भी इनकी सभा में थे। मिर्जा गालिब को दरबार से वृत्ति मिलती थी, महाकवि दाग का स्थायी निवास रामपुर में था और वे दरबार के आश्रित थे। लखनऊ के अमीर मीनाई भी रामपुर दरबार के आश्रय में थे और इन्होंने 1873 ई० में रामपुर के शायरों और कवियों का इतिवृत्त कल्बे अली खां के आदेश से लिखा, जिसका नाम 'इन्तिखावे यादगार' है।

ग्वालियर, टिहरी, लुहारू, जावरा, इन्दौर, पटियाला, भोपाल, बनारस, विजयनगरम् आदि नरेशों के साथ कल्बे अली खां के बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। किशोरावस्था से ही इनकी ललित कलाओं में रुचि थी। ऐसी स्थिति में अच्छे संगीतज्ञ भला इनका आश्रय क्यों न लेते ?

नवाब कल्बे अली खां से सम्बद्ध संगीतज्ञ : कल्बे अली खां के समय तक वाकर

अली खां, (काजम अली खां) मियां सुलेमान (शोरी के शागिर्द) कुतुबुद्दीला, रोशन अली खां, अली मुहम्मद खां, मुहम्मद खां, अलहदाद खां, कुतुब अली खां, फैजुल्लाह खां और रजव अली खां जैसे गुणी रामपुर दरबार में आ चुके थे। वहादुर हुसेन खां, और रहीम खां तो थे ही। कुदरु सिंह पखावजी भी कल्वे अली के आश्रय में रहे थे। और उनके गुरु भाई नाजिर खां भी। इन गुणियों में अधिकांश वाजिद-अलीशाह के पास थे।

नवाब हैदर अली खां : ये नवाब यूसुफ अली खां के छोटे पुत्र और नवाब कल्वे अली खां के छोटे भाई थे। इनको जिला वदायूं का विलसी इलाका मिला था, इसलिए ये कभी विलसी में रहते थे, कभी रामपुर में। स्वयं अच्छे कवि, संगीतज्ञ और कहानीकार भी थे।

नवाब हैदर अली खां का ऋण संगीत-जगत् पर बहुत बड़ा है। वह वंश जो विद्या को छिपाने के लिए यहां तक बदनाम रहा कि अपने घर के बच्चों से भी दुराव करता रहा, उससे सब कुछ सीखकर संसार के लिए सुलभ कर देना और अपनी सन्तान को भी इस विद्या के प्रचार और प्रसार के लिए वसीयत करना असामान्य कार्य है।

हैदर अली खां के संगीत गुरु : वहादुर हुसेन खां, सादिक अली खां वासम खां, नवाब हैदर अली खां के गुरु थे। ये वंश एक ही था।

इनके अतिरिक्त वाकर अली खां, काजम अली खां के खयालिए, शोरी के शिष्य मियां सुलेमान कुतुबुद्दीला, रोशन खां डागर, अली मुहम्मद खां, मुहम्मद खां कुतुब अली खां, रजत अली खां भी विशेषतया नवाब हैदर अली खां के दरबार में उपस्थित रहते थे। वे सभी उस युग के मूर्धन्य गुणी थे।

हैदर अली खां का सत्संकल्प : हैदर अली खां के छोटे पुत्र साहजादा अशफाक अली खां (जानी साहव) का कथन है, “मेरे पिता ने यह विचार किया कि इस विद्या (संगीत) पर ऐसा विस्तृत एवं प्रामाणिक ग्रंथ लिखा जाये, जिसमें संगीत की समस्त जटिल समस्याओं और कठिन पक्षों का समाधान कर दिया जाये, वे पक्ष ऐसे हों, जिन्हें पूर्ववर्ती विचारकों ने गुप्त रखा है। साथ ही साथ उन मतभेदों का निवारण भी कर दिया जाये, जो शताब्दियों से चले आ रहे हैं और जिन्हें विभिन्न ‘मत’ समझा जाता रहा है। संक्षेप-प्रियता के कारण जिन पक्षों के स्पष्टीकरण से बचा गया है, उनका स्पष्टीकरण कर दिया जाये। मेरे पिता ने उस ग्रंथ का लेखन आरम्भ किया। यद्यपि वह ग्रंथ पूर्ण न हुआ, तथापि एक सीमा तक लिखा जा चुका था, तभी उनका स्वर्गवास हो गया।”¹

ये शब्द हैदर अली खां के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हैं कि वे संगीत और

1. संगीत चिन्तामणि, पंचम संस्करण—आचार्य बृहस्पति, पृ० 387।

संगीत-जगत् की सेवा के लिए कितने तत्पर थे। वाणी पर उनका अधिकार था। उनमें विषय-विवेचन की शक्ति थी और वे विषय का स्पष्टीकरण उस प्रकार से करना चाहते थे, जिस प्रकार का आश्रय लेने में उस समय के गुणी सर्वथा असमर्थ और विवश थे।

तोतारटन्त को जिन्होंने सब कुछ समझा हो, न जिनके मन में प्रश्न उठते हों और न जिनमें प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता हो, जो अपने काम को छिपाते हों, उनसे काम लेना, अभ्यास करके उस कला पर अधिकार करना और उसके गोपनीय रहस्यों को चिन्तन के बल पर उद्घाटित कर देना सामान्य कार्य न था, परन्तु दृढ़ संकल्प, उदार हृदय, विद्या-व्यसन और लगन के साथ ही साथ ईश्वर ने हैदर अली खां को अन्य भौतिक साधन भी दिए थे, जिनका उपयोग उन्होंने भरपूर किया।

वहादुर हुसेन खां से 'सुर सिंगार' की शिक्षा आपको बहुत अनुनय-विनय करने के बाद प्राप्त हो सकी। इन्होंने अपने अथक परिश्रम से सुरसिंगार और वीन दोनों वाद्यों पर पूर्ण अधिकार कर लिया और अपने गुरुओं जैसा ही बजाने लगे। वीणा में मिजराबों के 360 कायदे, जो अपने वंश से बाहर थे, गुणी लोग नहीं बताते थे, उन सबको नवाब हैदर अली खां ने एक लाख रुपये देकर सीख लिया। यह कथा आचार्य बृहस्पति ने स्वयं रामपुर के उन बड़े बूढ़ों से सुनी थी जो संगीतजीवी नहीं थे और हैदर अली के बड़े पुत्र साहबजादा सआदत अली खां की गोष्ठी में प्रतिदिन बैठने वाले थे।

वहादुर हुसेन खां की मृत्यु के बाद हैदरअली ने उनके नाबालिग धेवते को शिक्षा देने का भार ले लिया क्योंकि उसके पिता अमीर खां की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। यह बालक आगे चलकर वजीर खां के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वासत खां और हैदर अली खां : वासत खां को करम इमाम ने निस्सन्तान लिखा है, परन्तु भातखण्डे जी वासत खां के पुत्रों की संख्या चार बताते हैं, उनमें से तीन के नाम मुहम्मद अली खां, वाकर अली खां और अली मुहम्मद खां बताते हैं, चौथे का नाम भातखण्डे जी ने नहीं लिखा।¹

मुहम्मद अली खां को करम इमाम ने उमराव खां वीनकार का भाई कहा है। यदि मुहम्मद अली खां वासत खां का पुत्र थे, तो उमराव खां के चचेरे भाई हुए।

हैदर अली खां के छोटे पुत्र जानी साहब² और ठाकुर नवाब अली खां³ मुहम्मद अली खां को वासत खां का पुत्र कहते हैं।

1. भताखंडे, संगीत शास्त्र, भाग 4, पृ० 225।

2. नगमए, पृ० 4।

3. मुबारिक, भाग 3, भूमिका।

वासत खां के दो और पुत्रों, वाकर अली खां और अली मुहम्मद खां, की चर्चा उन गुणियों में आ चुकी है, जिन्हें हैदर अली खां की सेवा में उपस्थित बताया गया है। यद्यपि इन दोनों को वासत खां का पुत्र नहीं कहा गया है।

भातखण्डे जी को मअदन्-उल्-मूसिकी के कुछ अंश का अनुवाद उनके एक लखनऊ-निवासी ताल्लुकेदार मित्र (ठाकुर नवाब अली खां) ने करके भेजा था।¹ मुहम्मद अली खां ठाकुर नवाब अली के गुरु थे ! अपने दोनों भाइयों, वाकर अली खां और अली मुहम्मद खां के विषय में मुहम्मद अली खां ने ही ठाकुर नवाब अली खां को बताया होगा। भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग 4, पृ० 223 पर इसीलिए वासत खां के पुत्रों में मुहम्मद अली खां, अली मुहम्मद खां और वाकर अली खां के नाम दिए हैं और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं।

यहां प्रस्तुत विषय इतना ही है कि वासत खां और उनके दोनों पुत्र वाकर अली खां और अली मुहम्मद खां हैदर अली खां से सम्पृक्त थे और हैदर अली खां ने वासत अली खां से शिक्षा ली थी।

हैदर अली खां के दरबार के अन्य गुणी

मुहम्मद खां (बड़े मुहम्मद खां) और उनका वंश : ये लखनऊ निवासी शक्कर कवाला के पुत्र थे। अहमद खां इनके भाई थे। मुहम्मद खां तान, पलटा, तहरीर, जमजमा में बहुत करारे थे। दक्षिण में इनकी गायकी का बड़ा प्रताप था। इनकी वेश-भूषा दक्षिणी थी, केशों का जूड़ा बांधते थे। रीवां-नरेश रघुनाथ सिंह के यहां एक सहस्र रुपये मासिक पर नौकर रहे थे। रीवां में ही इनकी मृत्यु हुई।² ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिन्धिया के दरबार में भी बारह सौ रुपये मासिक वेतन पर रहे थे। हद्दू खां-हस्सू खां ने इनकी गायकी की नकल तैयार की थी।³

इनके चार पुत्र कुतुब अली, मुतव्वर खां, मुराद अली तथा एक अज्ञात नाम थे। कुतुबअली मुहम्मद खां की धर्मपत्नी की सन्तान थे और अवशिष्ट तीन किसी अन्य स्त्री की थे। कुतुब अली गुण में मुहम्मद खां के ही समान थे, इनकी मृत्यु भी रीवां में हुई।⁴

कुतुब अली भी हैदर अली के दरबार से सम्पृक्त थे।

रजब अली और फजा अली मुहम्मद अली खां के ही परिवार के थे।⁵ रजब अली भी हैदर अली खां के दरबार से सम्पृक्त थे।

1. भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग 4, पृ० 214।
2. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० 35।
3. भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग 4, पृ० 225-26।
4. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० 35।
5. वही।

कुतुबुद्दौला सितारिये : ये प्यार खां के शिष्य और वरेली निवासी थे। हैदर अली खां के दरबार से सम्पृक्त थे।

यह स्थिति स्पष्ट करती है कि हैदर अली खां को उस समय के चुने हुए और देशमान्य कलाकारों का घनिष्ठ सम्पर्क प्राप्त था। ऐसी दशा में यदि रामपुर संगीत का केन्द्र हो गया तो विस्मय की बात नहीं।

हैदर अली खां के शिष्य : हैदर अली खां ने दो योग्यतम शिष्यों का निर्माण किया। ये थे, वजीर खां और हैदर अली खां के बड़े पुत्र साहबजादा सआदत अली खां (छम्मन साहब)। स्वर्गीय भातखण्डे जी इन दोनों के ही शिष्य थे।

वजीर खां का देश-भ्रमण और पुनः रामपुर आगमन

आप ने गुरु की अनुमति से देश का भ्रमण किया और अपनी कला के कारण सभी जगह इनको सम्मान प्राप्त हुआ, विशेषतया कलकत्ता में। किंतु एक घटना ऐसी घटी जिसमें आपने गुरु के निमंत्रण की अवहेलना कर दी। बाद में इनके गुरु भाई छम्मन साहब स्वयं जाकर इन्हें रामपुर लिवा लाये। वजीर खां जहां साक्षर मात्र थे, वहां छम्मन साहब भाषाओं के विद्वान थे। यह घटना 19वीं शती ई० के अन्त की है। उस समय रामपुर में नवाब हामिद अली खां का शासन था। हैदर अली खां वजीर खां को लेकर रामपुर पहुंचे और हामिद अली खां को वजीर खां का शिष्य करा दिया।

वजीर खां के सम्मान को प्रमाणित करने वालो दो घटनाएं

रामपुर के किले में नवाब साहब के निजी प्रासाद 'मच्छीभवन' के द्वार पर एक लाल पर्दा पड़ा रहता था। एक दिन नवाब साहब का आदेश हुआ कि रात्रि के समय जो भी आये लाल पर्दे से दूर अपनी लालटेन छोड़ आये। उस समय बिजली नहीं थी।

रात्रि के समय वजीर खां आये, तो पहरेदार ने उनके सेवक से लालटेन दूर रखवा दी। वजीर खां ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया और चुपचाप लौट गये। जब वजीर खां के आने का समय बीत गया और वे न आये, तो नवाब हामिद अली खां ने पूछताछ की। जब ज्ञात हुआ कि वे आये थे और पहरेदार द्वारा अपमानित होकर लौट गए, तो राजकीय आज्ञा हुई कि सारे पहरेदारों की नाक काट ली जाए।

रामपुर नवाब रजा अली खां के ससुरसर अब्दुस्समद खां (अब्बन मियां) उस समय चीफ मिनिस्टर थे, उन्होंने चुपचाप सारे पहरेदार बदलवा दिये। जब सबेरा हुआ, तब नवाब साहब ने अब्बनमियां से पूछा, "हमारे आदेश का पालन हो गया।" उत्तर मिला, "सारे पहरेदार कैद हैं, यदि अपमान किया है, तो एक ने किया है, क्या

सबकी नाक कटवा ली जाए? राजकीय आज्ञा का पालन करना और निर्भय होकर करना तो पुरस्कार मिलने वाली बात है। पहरदार बेचारों ने तो राजकीय आज्ञा का पालन करते हुए लालटेन दूर रखवा दी थी, यदि नाक कटवा ली गई तो भविष्य में पहरदार राजकीय आज्ञा का पालन कैसे करेंगे?"

सैनिक क्षमा कर दिए गए। वास्तव में इस आज्ञा का तात्पर्य वजीर खां को मनाना था। हामिद अली खां जानते थे कि अब्दुनमियां स्थिति संभाल लेंगे। वही हुआ। यह घटना आचार्य बृहस्पति जी को रामपुर के विश्व-विख्यात पुस्तकालय के प्रबंधक प्रसिद्ध विद्वान मो० इम्तियाज अली खां, साहब अर्शी ने सुनाई थी। दूसरी घटना आचार्य महोदय को सैयिद हुन्ने अली (इब्न मियां) साहब से सुनने को मिली। सैयिद साहब मुहम्मद अली खां, वजीर खां, छम्न साहब और मैया गनपत राव के शिष्य थे और उनकी आयु प्रायः 80 वर्ष थी। वजीर खां के बाद ये गृनीजनखाने के इंचार्ज रहे।

सैयिद साहब का कथन है कि एक गोष्ठी में मुहम्मद अली खां और वजीर खां दोनों विद्यमान थे। वजीर खां हामिद अली खां के मुंह लगे थे और मुहम्मद अली खां छम्न साहब के सिर चढ़े। उन दिनों छम्न साहब लखनऊ में थे। उस गोष्ठी में वजीर खां और मुहम्मद अली खां में परस्पर कुछ कहा-सुनी हो गई। नवाब हामिद अली खां के आदेश से मुहम्मद अली खां को वहां से हटा दिया गया। वे भागे और छम्न साहब की कोठी में जाकर छिप गये।

मुहम्मद अली खां को वहां से निकलवाकर भी वजीर अली खां को संतोष न हुआ और वे नवाब साहब से बोले कि जिस दरबार में मेरा भी अपमान हो, वहां रहना मेरे लिए संभव नहीं।

यह सुनकर नवाब साहब ने आदेश दिया कि मुहम्मद अली खां की नाक काट कर लायी जाये। कर्नल मुहम्मद अली खां पठान इस आदेश के पालन के लिए उठे कि सैयिद इब्ने अली ने उन्हें रोककर नवाब साहब से निवेदन किया कि वजीर खां मेरे भी गुरु हैं, उनका अपमान हुआ है, इसलिए मुहम्मद अली खां की नाक मैं काट कर लाऊंगा। प्रार्थना स्वीकृत हुई।

सैयिद इब्ने अली ने पहरदार से चाकू लिया और मुहम्मद अली खां को खोज कर कहा, "खां साहब, छिपे रहिए। नवाब साहब बहुत गुस्से में हैं, मुझे आपकी नाक काटने के लिए भेजा है।" खुला चाकू देखकर बेचारे मुहम्मद अली खां गिड़-गिड़ाने लगे।

सैयिद इब्ने अली ने लौटकर नवाब साहब से निवेदन किया कि हुजूर, उनकी सारी अकड़ गायब हो गई, वे वजीर खां से माफ़ी मांगने के लिए तैयार हैं और खुला हुआ चाकू नवाब साहब के सामने रख दिया। नवाब साहब को विश्वास हो गया और बात समाप्त हो गई।

छम्मन साहव का रामपुर में आगमन

1915 ई० में छम्मन साहव होम मेम्बर होकर रामपुर आए। हैदर अली खां ने भले ही वजीर खां को क्षमा कर दिया हो, किंतु छम्मन साहव ने क्षमा नहीं किया था। उन्होंने नवाब हामिद अली खां को वासत खां के पुत्र मुहम्मद अली खां का शिष्य कराया। हामिद अली खां ने छम्मन साहव और वजीर खां दोनों के सम्मान की रक्षा का एक अभूतपूर्व उपाय निकाला। वजीर खां का गण्डा हैदर अली खां के आदेश से नवाब के दाहिने हाथ में बांधा जा चुका था। मुहम्मद अली खां का गण्डा इसलिए नवाब हामिद अली खां ने अपने बायें हाथ में बांधवाया। छम्मन साहव का अभिप्राय यह था कि मुहम्मद अली खां वजीर खां से दो पीढ़ी पूर्व के बुजुर्ग हैं इसलिए नवाब हामिद अली खां उनका सम्मान वजीर खां की अपेक्षा अधिक करें।

छम्मन साहव की शिक्षा

सदारंग-परम्परा की शिक्षा इन्हें अपने पिता हैदर अली खां से मिली। उनकी मृत्यु के पश्चात् ये वासत खां के पुत्र मुहम्मद अली खां से भी सीखते रहे?। इन्हें सत्रह सौ होरी ध्रुवपद याद थे। ये सुरसिंगार वजाते थे इनके साथ ही सुरसिंगार भी गया। ये कई भाषाओं के पंडित और मेधावी व्यक्ति थे।²

भैया गनपतराव इनके मौसरे भाई थे। सुन्दरबाई और चन्द्रभागा अपने युग की निरुज्जात गायिकाएं थीं। हैदर अली खां और सुन्दरबाई की संतान छम्मन साहव थे और ग्वालियर नरेश एवं चन्द्रभागा की संतान भैया गनपतराव।

चन्द्रभागा की चर्चा मअदन्-उल्-मूसिकी में इस प्रकार है—

“चन्द्रभागा गायिका हिन्दुस्तान के एक देशी राज्य के नरेश के घर में थी। खयाल सीधी पटली का अच्छा गाती थीं, अत्यन्त शिष्ट, सुरूप और उत्तम थी।”³

भैया गनपतराव और छम्मन साहव के रिश्ते की बात रामपुर के सभी गुणी जानते हैं।

भैया गनपतराव की संगति से छम्मन साहव को हारमोनियम का शौक हुआ। सदारंग-परम्परा के ‘ठाठभेद’ और ‘स्वर भेद’ नामक रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए हारमोनियम एक सरल साधन था, इसलिए छम्मन साहव को यह शौक हुआ। छम्मन साहव ने दो पुस्तकें लिखीं—

1. नगमातुल-हिन्द, पृ० 4।
2. वही।
3. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० 51।

(1) रहनुमाए हारमोनियम—इस पुस्तक में हारमोनियम बजाने की विधि है और इसमें बन्दिश की ठुमरेयां स्वर-लिपि सहित संगृहीत हैं।

(2) 'फलसफ मूसिकी अल मारूफ नगमए सआदत' इस पुस्तक का स्वराध्याय प्रकाशित हो चुका था, अब दुष्प्राप्य है। रामपुर की लायब्रेरी में इसकी एक प्रति है।

इस पुस्तक के 'रागाध्याय' का लेखन छम्मन साहब ने आरंभ किया ही था कि 1922 में 44 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।¹

भातखण्डे जी ने कहा है—बहादुर हुसेन खां, सादिक अली खां, मुहम्मद अली खां, बासत खां, जाफर खां आदि, सब तानसेन घराने के वंशज थे। चूंकि भातखण्डे जी को फारसी और उर्दू भाषा का ज्ञान नहीं था और न तो उन्हें फारसी व उर्दू के ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद ही पढ़ने को मिले, इसी कारण उन्होंने रामपुर के उपरोक्त गुणियों को तानसेन वंशज का बता दिया। जब कि ये सब गुणी सदारंग के वंशज में से थे। छम्मन साहब से भातखण्डे जी की घनिष्ठ मित्रता थी। वे रामपुर बहुधा उनके कारण और उनके लिए ही आते रहते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने उनसे अनेक बातें सीखीं। उत्तर के रागों के भेद मैंने उनकी संगति से भलीभाँति समझे। ये अनेक वाद्य बजाते थे। सुरसिंगार तो आपके साथ ही गया, ऐसा लोग मानते हैं।²

1918 ई० में दिल्ली की अखिल भारतीय संगीत-परिषद् में जब नवाब हामिद अली खां ने अध्यक्षता की थी, तब छम्मन साहब ने मल्हार के प्रकारों पर एक निबंध अंग्रेजी में पढ़ा था।

भातखण्डे-संगीत शास्त्र, भाग 4, पृ० 386 पर उस निबंध के मूल उद्धरण दिए हुए हैं। इस निबंध के आरंभ में छम्मन साहब ने लिखा है—

“मेरे पिता साहबजादा हैदर अली खां ने संगीत की शिक्षा हुसेन खां, बनारस वाले जाफर खां के पुत्र सादिक अली खां से ली, जो कलकत्ते में वाजिद अली शाह के मुलाजिम थे। मैंने अपने पिता से और बासत खां के पुत्र मुहम्मद अली खां से शिक्षा ली। जब से मेरा निवास रामपुर में हुआ, तब से नवाब हामिद अली खां साहब से मिले हुए प्रशिक्षण ने मेरी योग्यता में महत्त्वपूर्ण वृद्धि की। वीणा और रबाब की जो शिक्षा मुझे मेरे पूर्वजों से प्राप्त हुई है, वह शिक्षा किसी को भी देने से मुझे प्रसन्नता होगी।”³

छम्मन साहब एक कुशल रचनाकार थे। नगमात उल् हिन्द में छम्मन साहब

1. नगमए, पृ० 5।

2. भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग 4, पृ० 387।

3. वही, पृ० 386।

की बनाई हुई सरगमें हैं और भातखण्डे जी की क्रमिक पुस्तक मालिका के विभिन्न भागों में जिन ध्रुवपदों के अन्तर्गत 'सादत के प्रभु' मुद्रित है, वे छम्मन साहब की ही कृति हैं।

रामपुर निवासी खां साहब सलामत हुसेन खां (अलाउद्दीन मंहरवालों के गुरु अहमद अली खां के वंशज) वीणा वादन में छम्मन साहब के शिष्य हैं। उनका कहना है कि छम्मन साहब, उस्ताद ही नहीं, 'उस्तादगर' अर्थात् उस्तादों के निर्माण करने वाले थे। खां साहब का यह कथन सर्वथा सत्य है। छम्मन साहब ने स्व० भातखण्डे जैसे मेधावी शिष्यों के मन के संदेशों का निवारण किया और रागों के विषय में उन्हें उज्ज्वल दृष्टि दी।

छम्मन साहब के एकमात्र पुत्र नब्वा साहब की मृत्यु (1921 ई.) इंग्लैंड के प्रवास में हुई, परिणामस्वरूप शोकग्रस्त होकर छम्मन साहब भी 1922 ई० में चल बसे। यदि वह दीर्घायु होते, तो अपना ग्रन्थ पूरा करते, जिसका आरंभ हैदर अली खां ने कर दिया था।

साहबजादा अशफाक अली खां (जानी साहब)

जानी साहब हैदर अली खां के छोटे पुत्र अर्थात् छम्मन साहब के छोटे भाई थे। दस वर्ष की आयु से इन्होंने सितार सीखना आरंभ किया। छब्बीस वर्ष की आयु होते-होते इन्होंने सितार पर समस्त राग तैयार कर लिये और इसी काल में ध्रुवपद, होरियां याद कीं। इसके बाद काफी समय तक इन्होंने सुरसिगार, वीणा रबाब का अभ्यास किया। हैदर अली खां के दरबार के गुणियों का सम्पर्क इन्हें बाल्यकाल से प्राप्त था ही, इसलिए इनके ज्ञान में सदा वृद्धि होती रही।

तत्पश्चात् इनका सतसंग 16 वर्ष तक भैया गनपतराव के साथ रहा और इन्होंने उनसे हारमोनियम सीखा।

शिल्पकलाओं की ओर भी इनकी रुचि थी।¹ ये मुहम्मद अली खां और छम्मन साहब के शिष्य थे।²

जानी साहब निस्सन्तान थे। इन्होंने अपने भानजे शब्बीर अली खां को गोद लिया और पाला-पोसा। शब्बीर अली खां (लड्डन साहब) की मृत्यु भरी जवानी में हुई और जानी साहब इस वज्रपात से मर्माहत हो गये। इन्होंने अपने इस भानजे के शरीर को मक्का मदीना ले जाने का विचार किया। जीवन से सर्वथा निराश हो गए।³

1. नगमातुल-हिन्द, पृ० 168।

2. वही, पृ० 5।

3. वही, भूमिका।

चलते-चलते इन्होंने अपने संगीत संबंधी कुछ 'नोट्स' जैसे के तैसे 'नगमात-उल्-हिन्द' प्रथम भाग के नाम से प्रकाशित करा दिये¹, जो इनके कुछ महीनों के अग्रतन्त्र का परिणाम थे।² इस पुस्तक में कुछ सारणियां अपूर्ण हैं, जिनके नीचे इन्होंने टिप्पणी दी है—

“मेरा मस्तिष्क इस समय इन सारणियों को पूर्ण करने के लिए अनुपयुक्त है, इसीलिए इन सारणियों में कुछ भूलें भी हैं।”³

इनका विचार था कि ये छम्मन साहब की छोड़ी हुई सामग्री के आधार पर अपने ग्रन्थ का अगला भाग, यात्रा से लौटकर प्रकाशित करेंगे,⁴ परन्तु शोक ने इन्हें किसी योग्य न रखा था। यात्रा से लौटने पर भी इन्हें मानसिक शान्ति न मिली और जीवन के अंतिम क्षणों में ये सर्वथा बहरे हो गये।

1940 के आसपास जानी साहब का स्वर्गवास हो गया।

नवाब हामिद अली खां और संगीत

19वीं शती ई० के अन्त में नवाब हामिद अली खां वजीर खां के शिष्य हुए थे। इससे पहले इनायत खां (वर्तमान डागुर बन्धुओं के नाना अर्थात् बहराम खां के पुत्र सद्दू खां के बेटे।)⁵ हामिद अली खां के गुरु थे। वजीर खां के कारण उन्होंने रामपुर छोड़ दिया।

हामिद अली खां साहब को बचपन में संगीत की शिक्षा हैदर अली खां से मिली थी। इनायत खां से उन्हें अत्यन्त लाभ पहुंचा, फिर वजीर खां के सरसंग ने उन्हें पारस बना दिया। सैयिद इब्ने अली का कथन है कि मौज में आकर जब कभी हामिद अली खां गाते थे, तब लोगों के हृदय पर बड़ा प्रभाव होता था।

ग़ालियर की एक गोष्ठी में नवाब हामिद अली खां ने स्व० अल्लाह बन्दे खां और उनके पुत्र नसीरुद्दीन खां को अनेक ध्रुवपद सुनाये थे। पखावज, तबले और नाच में भी उनकी गति अच्छी थी।

स्व० भातखण्डे, स्व० मुश्ताक हुसेन खां, स्व० अच्छन महाराज, तबलावादक अजीम खां इत्यादि ख्यातनामा व्यक्ति हामिद अली खां के विधिवत गण्डाबंद शिष्य थे।

हामिद अली खां का दरबार विद्वानों और पंडितों का आश्रय स्थल था। पंडित नन्दराम, पं० दामोदर दास, पं० कन्हैया लाल, बनारस के पंडित केशव जी

1. नगमातुल-हिन्द, पृ० 56।

2. वही, पृ० 65।

3. वही।

4. वही, पृ० 168।

5. संगीत, अप्रैल-मई 1960, पृ० 22।

जैसे विद्वान हामिद अली खां के दरबार में थे, कवि लोग भी थे ।

1928 ई० में दिल्ली की अखिल भारतीय संगीत परिषद् की अध्यक्षता आपने की और आपसे भातखण्डे जी को विद्या, सम्मान, अर्थ सभी कुछ मिला ।
मौरिस कॉलेज लखनऊ की स्थापना में आपका बड़ा योग्य था ।

हामिद अली खां के दरबार के संगीतज्ञ

यों तो शायद भारत में कोई भी चोटी का कलाकार होगा, जो ईद या वर्षगांठ के उत्सव में रामपुर कभी न कभी न गया हो, परन्तु हामिद अली खां के दरबार में स्थायी रूप से आश्रय लेने वाले प्रमुख कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं—

1. वजीर खां वीणावादक (सदारंग के बाद, सातवीं पीढ़ी में)
2. करीम खां सेनिये सितारवादक
3. वहीद खां सेनिये सितारवादक
4. फिदा हुसेन खां सरोदवादक (बहादुर हुसेन खां के शिष्य)
5. बुन्दा खां खारी कुएं वाले (सारंगीवादक)
6. इनायत हुसेन खां (बहादुर हुसेन खां के शिष्य, मुश्ताक हुसेन खां और निसार हुसेन खां के ससुर, गुलाम मुश्ताफा खां के नाना और हद्दू खां के दामाद) गायक ।
7. हैदर खां (निसार खां के दादा) गायक ।
8. रजा हुसेन (लखनऊ वाले) गायक ।
9. नजीर खां (काले मजीर) मुरादाबाद वाले गायक ।
10. गफूर खां (नजीर खां के भाई) गायक ।
11. मुहम्मद अली खां (बासत खां के पुत्र, सदारंग के सरपोते)
12. भैया गनपतराव (महाराज ग्वालियर के पुत्र, अतिथि रूप में)
13. साहबजादा छम्मन साहब (होम मेम्बर) ।
14. साहबजादा जानी साहब, छम्मन साहब के छोटे भाई ।
15. गया प्रसाद (कुदम सिंह के वंशज) मृदंगवादक ।
16. नासिर खां, मृदंगवादक ।
17. अयोध्या प्रसाद (गया प्रसाद के पुत्र) मृदंगवादक ।
18. नत्थू खां, दिल्ली वाले (तबलावादक) ।
19. वजीम खां, तबलावादक ।
20. मोदू खां तबलावादक (करामत हुसेन खां के दादा अर्थात् मसीत खां के पिता) ।
21. मुहम्मद हुसेन दतिया वाले नर्तक और गायक ।

22. अच्छन महाराज, नर्तक (हामिद अली खां ने ही इनका नाम 'अच्छन' रखा, वास्तविक नाम जगन्नाथ प्रसाद था) ।
 23. लच्छू महाराज, नर्तक (अच्छन के छोटे भाई, वास्तविक नाम वैजनाथ प्रसाद) ।
 24. मुश्ताक हुसेन खां और उनके पुत्र इश्तिमाक हुसेन खां ।
 25. नवाब मिर्जा, सोज पढ़ने वाले ।
- हामिद अली खां का स्वर्गवास 1930 ई० में हुआ ।

नवाब रजा अली खां

रामपुर नवाब रजा अली खां 1930 ई० में गद्दी पर बैठे । हामिद अली खां के दरबार के गुणियों में मुस्ताक हुसेन खां, इश्तिफाक हुसेन खां, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, अयोध्या प्रसाद, वहीद खां इत्यादि इनके दरबार में भी रहे ।

1932 ई० के आस-पास सादिक अली खां वीनकार और अहमद जान खां थिरकवा ने भी इनका आश्रय लिया । सलामत हुसेन खां, शब्बन खां, वजीर हुसेन खां (काले नजीर खां के शिष्य) इत्यादि भी इनकी नौकरी में रहे । निसार हुसेन खां के पिता फिदा हुसेन खां ने भी बड़ौदा छोड़ने के बाद इनका आश्रय लिया ।

नवाब रजा अली खां ने अनेक बार दिल्ली में कान्फ्रेंसों की अध्यक्षता की । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब रामपुर राज्य भारत में विलीन हो गया, तब भी अनेक कलाकार इनके आश्रित रहे ।

आचार्य बृहस्पति की चार पीढ़ियां इस राज्य में बीतीं । इन नवाब साहब के काल में आचार्य महोदय ने रामपुर में संगीत शिक्षा प्राप्त की और 1937 ई० में संगीत में शोध कार्य का श्री गणेश किया ।

7 मार्च, 1966 को नवाब रजा अली खां का स्वर्गवास हो गया ।

रामपुर की सांगीतिक परम्परा का मर्म

सदारंग परम्परा के अधिकांश कलाकार दिल्ली केन्द्र की अस्थिरता के कारण अवध और रामपुर रियासतों में जाकर बस गए, जहाँ उन्हें आश्रय प्राप्त हुआ। अवध के नवाब वाजिद अली शाह ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले की तरह 'संगीत कला' के उत्थान के लिए लगा दिया। जब अवध में भी राजनैतिक अशान्ति प्रारंभ हो गई तब वहाँ के कलाकारों को भी इधर-उधर आश्रय ढूँढ़ना पड़ा जिसमें रामपुर दरबार ही ऐसा था जिसने सभी कलाकारों का स्वागत किया। अतः संगीत के इतिहास में रामपुर दरबार के शासकों का नाम स्वर्णक्षरों में लिखा जाना चाहिए जिन्होंने दृढ़ संकल्प होकर संगीत की अमूल्य परम्परा की रक्षा करके उसे जीवित रखा। आज उसी का परिणाम है कि देश के मूर्धन्य कलाकार जैसे स्व० अलाउद्दीन खां, स्व० हाफिज अली खां, स्व० मुस्ताक हुसैन खां और स्व० भातखण्डे जी, स्व० आचार्य बृहस्पति जैसे रत्नपारखी लोगों ने रामपुर में विकसित इस परम्परा से लाभ उठाया। इस अध्याय में रामपुर की सदारंग-परम्परा के रहस्य पर प्रकाश डालेंगे जिसका प्रतिनिधित्व स्व० भातखण्डे जी और स्व० आचार्य बृहस्पति जी करते हैं।

सदारंग परंपरा से संबंध

किसी कला का सम्बन्ध परम्परा अथवा सम्प्रदाय से बहुत गहरा होता है। क्योंकि 'सम्प्रदाय' का अर्थ है 'सम्—भलीभांति,' 'प्र—प्रकर्षपूर्ण' और 'दाय—पूर्वजों की सम्पत्ति'। जो कला पूर्वजों द्वारा परिश्रम से, विधिवत् शिक्षा द्वारा प्राप्त होती है उसको ही हम सम्प्रदाय अथवा परम्परा कहते हैं। आजकल संगीत के क्षेत्र में घरानों का नाम लेने का प्रचलन बहुत हो गया है। किन्तु 'घराने' का क्षेत्र सीमित हो जाता है, उसका वैयक्तिक और स्थानीय महत्त्व है। आज हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम संगीत जगत् के सामने उस रहस्यों को सरलतम ढंग से स्पष्ट कर सकें ताकि इससे हर संगीत-प्रेमी लाभ उठा सकें।

कल्याण ठाठ और उसका महत्त्व

रामपुर-परम्परा जो कि सदारंग-परम्परा से संबंधित है, इनके वीणा-रहस्य को समझने की अति आवश्यकता है। इस परम्परा में कल्याण ठाठ को सबसे

पहला ठाठ मानते हैं। इसी ठाठ से अन्य नौ ठाठों की उत्पत्ति भी होती है। इसी कारण यमन या कल्याण को ही मूल ठाठ माना गया है। स्व० भातखण्डे जी ने अपनी क्रमिक पुस्तक मालिका के भाग 2 में सबसे पहला राग यमन लिया है और उसके लक्षण-गीत के शब्द भी इस प्रकार दिये हैं —

“प्रथम कल्याण ठाठ-जनक सांच मानिए ”

“मारिफुन्नगमात” पृ० 76

‘राग यमन’ का प्राचीन नाम ‘कल्याण’ है। नाम से स्पष्ट है कि यह राग स्वतः मंगलमय व कल्याणकारी है। इस राग के स्वरों को गाने-बजाने से समस्त वातावरण में शान्त रस का प्रादुर्भाव होने लगता है और ऐसा अनुभव होता है जैसे प्रकृति सबका कल्याण करने के लिए आतुर है।

अब हम कल्याण ठाठ के स्वरों का परीक्षण करके देखें कि किसी विधि से इसके स्वरों से अन्य ठाठों का जन्म होता है। इससे पूर्व इस बात को ध्यान से समझना चाहिए कि स्वरों का उतार-चढ़ाव ही किसी नये क्रम को जन्म देता है।

कल्याण ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं इसमें मध्यम तीव्र है तथा अन्य सभी स्वर शुद्ध लगते हैं।

बिलावल ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं कल्याण ठाठ के मध्यम को कोमल कर देने से इस ठाठ की उत्पत्ति हुई।

खमाज ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं बिलावल ठाठ के स्वरों में निपाद कोमल कर देने से खमाज ठाठ की उत्पत्ति होती है।

काफी ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं खमाज ठाठ के गंधार को कोमल कर देने से काफी ठाठ की उत्पत्ति होती है।

आसावरी ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं काफी ठाठ के स्वरों में धैवत करने से आसावरी ठाठ की उत्पत्ति होती है।

भैरवी ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं आसावरी में ऋषभ स्वर कोमल कर देने से भैरवी ठाठ की उत्पत्ति होती है।

मारवा ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं कल्याण ठाठ में ऋषभ कोमल कर देने से मारवा ठाठ की उत्पत्ति होती है अथवा आसावरी ठाठ के स्वरों की स्थिति बदलने से (कोमल को तीव्र और तीव्र को कोमल) मारवा ठाठ के स्वर प्राप्त होंगे।

पूर्वी ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं मारवा ठाठ के धैवत कोमल कर

देने से पूर्वी की उत्पत्ति होती है अथवा काफी ठाठ के स्वरों की स्थिति बदलने से (कोमल को तीव्र और तीव्र को कोमल) पूर्वी ठाठ के स्वर प्राप्त होंगे।

तोड़ी ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं पूर्वी ठाठ के स्वरों में गांधार कोमल कर देने से तोड़ी ठाठ की उत्पत्ति होती है। अथवा खमाज ठाठ के स्वरों की स्थिति बदलने से (कोमल को तीव्र और तीव्र को कोमल) तोड़ी ठाठ के स्वर प्राप्त होंगे।

भैरव ठाठ के स्वर—स रे ग म प ध नि सं तोड़ी ठाठ के गांधार को तीव्र और मध्यम को कोमल कर देने से भैरव ठाठ की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार रामपुर-परम्परा का यह रहस्य प्रशंसनीय है कि एक ही ठाठ के स्वरों को लौटने-पलटने से नये-नये ठाठों की उत्पत्ति होती है, अतः इस क्रिया को 'ठाठ-लौटना' कहते हैं। इस प्रकार कल्याण ठाठ से उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दसों ठाठों की प्राप्ति सरलतम ढंग से हो जाती है। यह वैज्ञानिक पद्धति है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार इस पद्धति से ठाठ बनाने की क्रिया को बहादुर हुसैन खां की परम्परा में 'ठाठ-भेद' कहते हैं।

मूच्छन्ता पद्धति पर आधारित स्वर-भेद प्रक्रिया से ठाठों की प्राप्ति

रामपुर की परम्परा में दूसरी विधि से भी ठाठों की प्राप्ति होती है जो मूच्छन्ता-पद्धति से मिलती है जिसे 'स्वर-भेद' नाम दिया है। तात्पर्य यह है कि इस विधि में एक ठाठ के प्रत्येक स्वर को षड्ज की स्थिति में रखकर देखते हैं तो आधार स्वर के बदलने से स्वरों की स्थिति अपने आप बदल जायेगी। इसी कारण यह मूच्छन्ता पद्धति से मिलती-जुलती प्रक्रिया होने पर भी भिन्न है क्योंकि इसमें स्वरों के नाम बदल जाते हैं जबकि मूच्छन्ता पद्धति में स्वरों के नाम नहीं बदले जाते। दक्षिण के विद्वानों ने इस क्रिया को षड्ज-चालन भी कहा है।

स्वर-भेद प्रक्रिया द्वारा ठाठ की प्राप्ति

कल्याण ठाठ

स रे ग म प ध नि स रे ग म प ध नि

स रे ग म प ध नि—भैरवी ठाठ

स रे ग म प ध नि—काफी ठाठ

स रे ग म प ध नि—बिलावल ठाठ

स रे ग म प ध नि—मेलदलन ठाठ

स रे ग म प ध नि—आसावरी ठाठ

स रे ग म प ध नि—खमाज ठाठ

उपरोक्तविधि से कल्याण के प्रत्येक स्वर से विभिन्न ठाठों के स्वरों की प्राप्ति होती है। इनमें से भैरवी, काफी, बिलावल, आसावरी और खमाज 5 ठाठों का प्रयोग हिन्दुस्तानी संगीत में होता है। मेलदलन के स्वर हमारे ठाठों के अंतर्गत नहीं आते हैं क्योंकि इसमें पंचम स्वर नहीं मिलता अतः इस स्वर समूह को आचार्य बृहस्पति ने 'मेलदलन' नाम दिया है।

पड्ज-चालन की यह प्रक्रिया किसी भी राग के विस्तार को बढ़ाने में सहायक है। इस रहस्य को ध्यान में रखते हुए गायक-वादक कभी-कभी किसी राग को गाते-गाते किसी भी स्वर को आधार स्वर मानकर अन्य रागों की छाया दिखाते हैं। इस काम के लिए बड़ी कुशलता की आवश्यकता है। कल्याण ठाठ की तरह ही बिलावल, खमाज, काफी, आसावरी तथा भैरवी ठाठों में स्वर-भेद प्रक्रिया से संपूर्ण जाति के रागों के स्वरों की प्राप्ति होगी। जबकि मारवा, पूर्वी और भैरव ठाठों के स्वरों में 'रे-ग' का अन्तर 'स ग' के अन्तर के समान होने से इन ठाठों से औडुव जाति के रागों के स्वरों की प्राप्ति होगी। रामपुर के गुणियों ने इस प्रकार की प्रक्रियाओं का प्रयोग व्यवहार में किया था जिसमें छम्भन साहव का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

मारवा ठाठ के स्वरों का अभ्यास करते समय यदि 'रिषभ' को आधार मान कर गायन करेंगे तो मालकोश राग की छाया आएगी, गायक आसानी से इस राग की फिरत कर सकता है। उसी प्रकार मारवा के गंधार स्वर को आधार मानकर राग दुर्गा, तीव्र मध्यम को आधार मानकर धानी, पंचम को आधार मानकर धैवत और पड्ज छोड़ते हुए, हिंडोल, धैवत को आधार मानकर भोपाली तथा निषाद को आधार मानकर मेघ राग गा सकते हैं। ये सभी राग औडुव जाति के हैं जिनमें मारवा ठाठ के षड्ज व पंचम स्वरों की आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण मारवा राग को षड्जहीन करके भी गुणी लोग गाते थे, इसलिए इस प्रकार के षड्जहीन मारवा को 'निखरजा' मारवा कहते थे। इस रहस्य को रामपुर के गुणियों ने सेनियों की परम्परा से प्राप्त किया था। स्वर-भेद की यह रीति गुरु-शिष्य परम्परा से चली आती रही है। आचार्य बृहस्पति ने जो स्वयं रामपुर दरबार के गुणियों के सम्पर्क में रहे थे, इन रहस्यों को उनके मुख से सप्रयोग कहलवाया।

'स्वर-भेद' का महत्त्व निम्न शब्दों से स्पष्ट है—

'स्वर-भेद' से रागों के ढांचे प्राप्त होते थे। वीणा जैसे वाद्यों में बाएं हाथ की क्रिया में मींड प्रधान रहती थी। 'स्वर-भेद' को आधार मानकर विभिन्न रागों

के वास्तविक स्वर-स्थानों की प्राप्ति मींड द्वारा की जाती थी। इस वास्तविकता को कभी नहीं भूला जाना चाहिए। ठाठ शब्द का अर्थ ही ठठरी या ढांचा है।”

(संगीत चिन्तामणि, प्रथम संस्करण, पृ० 394।)

स्वर-भेद की प्रक्रिया का प्रयोग रामपुर ने गुणियों के हारमोनियम जैसे टेम्पर्ड स्केल वाद्य पर किया। इस वाद्य की खूबी यही है कि इसमें स्वर अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं, बेसुरेपन की नाममात्र भी आशंका नहीं होती है। हारमोनियम के पदों को बारी-बारी से षड्ज मानकर आसानी से यह प्रक्रिया की जाती है। इसी कारण रामपुर के संगीत-प्रेमी छम्भन साहव, जानी साहव, भैया गनपतराव और मौजुद्दीन खां सभी अच्छा हारमोनियम बजाते थे। यही कारण है कि रामपुर-परम्परा में ठुमरी गायन का विकास अद्वितीय ढंग से हुआ। भैया गणपतराव और मौजुद्दीन खां ठुमरी-गायन के सम्राट थे। दोनों का संबंध रामपुर से निरन्तर बना रहा था। ठाठ-भेद और स्वर भेद का काम द्रुतलय में हारमोनियम पर आसानी से किया जा सकता है।

सदारंग परम्परा का यह रहस्य रामपुर के गुणियों ने ग्रहण किया और इसका प्रयोग आलाप में किया जिससे राग की गहराई में उतरने का लाभ प्राप्त हुआ। सेनियों के इस भेद को ठुमरी-दादरा गानेवालों ने ग्रहण करके इन कलाकारों ने हारमोनियम जैसे बेसुरे वाद्य को भी रंगीन और सुरीला बना दिया।

नवीन रागों के निर्माण की वैज्ञानिक पद्धति

भातखंडे¹ जी ने कहा है कि बिलावल राग के सभी प्रकार रात के तमाम रागों के जवाब हैं और प्रातर्गेय हैं।

भातखंडे जी ने अनेक गायकों का यह मत बताया है, परन्तु इस पर स्वयं निर्णय नहीं दिया है।

रामपुर परम्परा के मर्मज्ञ आचार्य बृहस्पति का कहना है कि कल्याण ठाठ का पंचम ही बिलावल ठाठ का षड्ज है। कल्याण ठाठ का धैवत बिलावल का रिषभ है, कल्याण का निषाद बिलावल का गंधार है, कल्याण का षड्ज बिलावल का मध्यम है। कल्याण का रिषभ बिलावल का पंचम है। कल्याण का गंधार बिलावल का धैवत है, कल्याण का मध्यम बिलावल का षड्ज है। अर्थात् कल्याण के निम्न स्वर—

|
प ध नी सा रे ग म प

ही

1. भा० सं० शा०, भाग 4, पृ० 730।

बिलावल के—

स रे ग म प ध नी सं

हैं।

एमन-कल्याण के दोनों मध्यम ही अल्हैया बिलावल के दोनों निषाद हैं।

कल्याण के पूर्वांग में स्थित गंधार ही बिलावल के उत्तरांग में स्थित धैवत है। इस दृष्टि से कल्याण और बिलावल में सहज संबंध है।

यदि बिलावल गाते समय तानपूरे के बायीं ओर का तार शुद्ध मध्यम में मिलाया जाये, तो यह स्थिति वच्चों की भी समझ में आ जाएगी। सामान्यतः बिलावल गाते समय लोग तानपूरे पर पंचम स्थापित करते हैं जोकि कल्याण का रिषभ है इसीलिए बिलावल में कल्याण का रूप सामान्य व्यक्तियों के लिए छिपा रहता है। इसीलिए बिलावल को सवेरे का कल्याण कहते हैं।

बिलावल ठाठ और कल्याण ठाठ के रागों का परस्पर मिश्रण अति मधुर और स्वाभाविक होता है जैसे—राग देवगिरि और एमनी बिलावल/राग देवगिरि की रचना बिलावल के स्वरों में शुद्ध कल्याण के मिश्रण से हुई है। उसी प्रकार आरोह में एमन और अवरोह में बिलावल के स्वरों को कुशलता से गुंथन से एमनी बिलावल राग की रचना होती है। बिलावल प्रातःकालीन राग है जबकि कल्याण रात्रिगेय राग है, फिर भी दोनों रागों की मिश्रित स्वर-रचना कर्णप्रिय लगती है।

पूर्वी ठाठ के पंचम को षड्ज मानने पर तीव्र धैवत के ललित की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—

पूर्वी—प ध नी सं रे ग म प

ललित—स रे ग म प ध नी सं

भातखंडे जी की परंपरा में ललित में तीव्र धैवत का व्यवहार होता है, वह ललित पूर्वी ठाठ का ही प्रसाद है।

कोमल धैवत के ललित का जन्म रात्रिकालीन राग से न होकर प्रातःकालीन तोड़ी ठाठ से हुआ है। तोड़ी ठाठ के पंचम को षड्ज मानने पर कोमल धैवत की ललित होती है जो इस प्रकार है—

तोड़ी—प ध नी सं रे ग म प

ललित—स रे ग म प ध नी सं

काफी ठाठ के पंचम के षड्ज मानने से आसावरी ठाठ की उत्पत्ति हुई है—

काफी—प ध नी सं रे ग म प

आसावरी—स रे ग म प ध नी सं

काफी ठाठ के अनेक राग रात्रिगेय हैं। विचार करने पर आसावरी ठाठ के अनेक राग प्रातःकालीन राग रात्रिगेय राग के जवाब हैं।

खमाज ठाठ के पंचम को षट्ज मानने पर काफी ठाठ निकलता है—

खमाज—प ध नी सं रे ग म प

काफी—स रे ग म प ध नी सं

उपरोक्त रागों के निर्माण का आधार 'स्वर-भेद' है जोकि आधार स्वर बदलने से प्राप्त हुए, यह मूर्च्छना-पद्धति के समान है।

दस ठाठ में से भैरव, पूर्वी, तोड़ी और मारवा ठाठ भारत या शाङ्गदेव की मूर्च्छनाओं में नहीं आते हैं। शेष छः ठाठ मूर्च्छनाओं में आते हैं। मूर्च्छना से प्राप्त न होने वाले पूर्वोक्त चारों ठाठों का मिश्रण जब मूर्च्छनाजन्य ठाठों के रागों में किया जाता है तब विभिन्न स्वर गुच्छों के पारस्परिक संबंध का ध्यान रखते हुए स्वर-योजना की जाती है। ऐसी दशा में चतुःश्रुति, सप्तश्रुति, नवश्रुति और तेरह श्रुतियों के संबंधों का ध्यान रखते हुए जाल बुना जाता है।

'स—ग' संबंध षट्श्रुतिक है, यही संबंध 'प—नी' और 'म—ध', 'रे—म' और 'ध—सं' में है।

46-125 22 2-301

सप्त श्रुतिक संबंध—'स—ग', रे—म (च्युत); 'रे—म', रे—म

97 23-120 28-125 51-148,

ग—प (च्युत), ग—प, ग—ध म—ध नी—रे में है।

74-171 79-176 102-199 125-22 2, 250-347

तात्पर्य यह है कि रागों के मिश्रण में पंचश्रुतिक और अष्टश्रुतिक स्वर अनिष्ट होते हैं।

आचार्य बृहस्पति ने तोड़ी, ललित और रामकली के मिश्रण से 'प्रभात रंजनी' राग की सृष्टि की है जो परस्पर संवादी स्वर गुच्छों की योजना का परिणाम है।

किसी भी दो या दो से अधिक रागों को मिश्रित करने का नियम यह है कि ऐसे विशिष्ट स्वर समूहों के जोड़े परस्पर बनते जायें जो सप्तक के मंद्र, मध्य और तार संस्थानों में सवाल-जवाब का काम करें। जैसे स्वरों का परस्पर संवाद यदि इष्ट होता है तब दोनों स्वरों को साथ-साथ बजाने से कर्णप्रिय लगते हैं।

राग प्रभात रंजनी

सवाल

जवाब

ध नि ध प म प नी सं० — रे ग रे स नि स ग म

नि स रे स नि स

ग म म म ग म

रे नी नी स

ध म म प

उपरोक्त सवाल जवाब में तीनों राग स्पष्ट झलकते हैं । यह कलाकार की कुशलता पर निर्भर है कि वह तीनों रागों के रंगों को किस प्रकार चित्रित करता है । उसे तीनों रागों का पूर्ण ज्ञान होगा तभी वह स्वर-गुच्छों को एक ही धागे में पिरो सकेगा ताकि तीनों राग अपने-अपने व्यक्तित्व को कायम रखते हुए भी एक-विभिन्न रूप खड़ा करते हैं । यह प्रभातरंजनी राग स्व० आचार्य महोदय के मस्तिष्क की रचना है—इस राग में वंदिशें भी उनके द्वारा बहुत सुन्दर व अनुकूल बनी हैं जिसका आनन्द उन्हें स्वयं गाकर अथवा बजाकर अनुभव करने में है ।

राग मिश्रण के नियम

राग निर्माण के लिए यह प्रक्रिया उपयोगी सिद्ध हुई है—जोकि बुद्धिप्रधान और आनन्द-दायक भी है इसके लिए दो प्रमुख तत्त्वों पर विशेष महत्त्व दिया जाता है । प्रथम जो प्रधान राग हो उस पर कलाकार का पूर्ण अधिकार हो और द्वितीय सहायक रागों की जानकारी भी अच्छी हो ताकि राग-मिश्रण के समय स्वाभाविक ढंग से राग का रूप दिखाया जा सके, जिसके आनन्द कलाकार स्वयं लेगा और श्रोतागण भी मिश्रण को सुनते समय बार-बार आश्चर्य को अनुभव करेंगे । मिश्र राग का रस लेने के लिए श्रोताओं को भी संगीत विषयक थोड़ा ज्ञान आवश्यक है तभी वे उस मिश्रण के सौन्दर्य को समझ सकेंगे ।

“जिस प्रबल राग में दूसरे राग को मिलाकर मिश्र राग का निर्माण किया जाता है, वह प्रबल राग मिश्रण के आरोह, अवरोह, पूर्वांग या उत्तरांग इत्यादि में से एक अथवा अनेक जगह लाया जा सकता है”—राग विज्ञान, भाग 6 ।

“इन सब नियमों का यही उद्देश्य है कि प्रबल राग प्रकृति की हानि न हो तथा दूसरे राग के मिश्रण से बनाई गई नवीन मिश्र राग रचना मूल राग के रसानुकूल और अधिक श्रवण मधुर हो । इस तत्त्व का पालन प्रायः सभी मिश्र रागों में किया जाता है । कई मिश्र राग ऐसे पाये जाते हैं कि जिनमें दो राग समप्रमाण या बराबर मात्रा में मिले हुए रहते हैं । ऐसे रागों में अधिक-प्रभावी राग कौन-सा है, यह सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा ही निश्चित किया जाता है ।”—राग

विज्ञान, भाग 6 ।

वसंत बहार—यह राग वसंत और बहार दो अलग-अलग रागों के मिश्रण से बना है। यह तो कलाकार की इच्छा पर निर्भर है कि वह किस राग को अधिक महत्त्व देता है। साधारणतः वसंत राग को ही प्रबल मानते हैं और उसमें बहार का मिश्रण करते हैं।

प्रायः मिश्रित राग अथवा नवीन राग अप्रचलित रहते हैं। जिन नवीन रागों का स्वरूप विस्तार सुलभ होगा और श्रवण-मधुर होगा वही राग भविष्य में लोक-प्रिय हो जाते हैं, तत्पश्चात् प्रचलित हो जाते हैं। जैसे राग मारू विहाग और जोग, जोगकंस।

राग मिश्रण का दूसरा तत्त्व यह है कि किसी भी राग के स्वरों को हूबहू उसी प्रकार कायम रखते हुए गायकी अन्य राग की होने से भी राग का रूप बदल जाता है। जैसे—मेघमल्लार में सारंग के स्वर हैं किन्तु मल्लार अंग की गायकी से सारंग का रूप ही विल्कुल बदल जाता है। ऐसे मिश्र रागों को गाते-बजाते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस राग का चलन दूसरे राग की स्वर-संगति को प्रदान किया जाता है। वह चलन दूसरे राग की स्वर-संगति के अनुरूप ही हो। उसमें राग के रस का भी ध्यान रखना उचित होगा क्योंकि यदि राग में कण्ठ रस भाव है तो उसमें हम चंचल प्रकृति का भाव यदि दिखायेंगे तब रस-भंग होगा।

तीसरा नियम मिश्रित रागों के लिए यह है कि जो भी राग मिश्रित किये जायें वे एक-दूसरे के पोषक अवश्य होने चाहिए। इस गुण के बिना राग-विस्तार सुलभ नहीं होगा। इसीलिए रागों का चयन एक ही ठाठ से करते हैं अथवा एक ही स्वर संगति वाले राग लेते हैं ताकि राग की रचना सरलतम रीति से हो। मिश्र रागों की खूबी यह होती है कि छोटे से छोटे स्वर समूह द्वारा आप रागों को परस्पर जोड़ सकें और वे समूह परस्पर ऐसे घुलमिल जाएं जैसे दूध-पानी।

ऐसे रागों के नाम भी अक्सर उन रागों पर रखते हैं जो प्रबल रहते हैं जैसे पूरिया-कल्याण। इसमें दोनों राग अपने स्थान पर प्रमुख हैं पूर्वांग में पूरिया चमकता है तो उत्तरांग में कल्याण खिलता है अतः दोनों रागों के नाम से राग प्रचलित होता। अतः जिन रागों का नाम दो रागों के नामों से मिलकर बना होता है वे मुरक्कब या संकीर्ण कहलाते हैं। उनके नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि आरोह-अवरोह में किस-किस राग का स्वरूप विस्तार में आयेगा। जैसे एमनी-बिलावल के आरोह में एमन और अवरोह में बिलावल मिले हैं।

स्व० आचार्य बृहस्पति ने कहा है कि—“अलग-अलग रंगों के रेशम की दो डोरियां हैं अगर उन्हें बट दिया जाये, तो दोनों रंग हर बल में बराबर-बराबर दिखाई देंगे, कोई भी एक रंग दूसरे रंग को दबायेगा नहीं। यही खूबी मुरक्कब

‘राग में होनी चाहिए।’

लाग-डाट से स्वरों का प्रयोग—किसी स्वर पर जाने का संकल्प किसी अन्य स्वर से किया जाता है वह लाग का स्वर कहा जाता है और जिस स्वर पर जाकर रुक जाता है वह डाट का स्वर कहा जाता है क्योंकि डाट का अर्थ है रुकना या स्थिर रहना। ये लाग आरोह की ओर से हो सकती है और अवरोह की ओर से भी।

सितारवादक या सरस्वती वीणावादक दरबारी बजाते समय मन्द धैवत के परदे को आधार बनाकर मध्य सप्तक के गांधार और मध्यम तक के स्वरों को सरलतापूर्वक मींड के द्वारा निकाल लेंगे। उन सब सुरों के लाग का स्वर धैवत कहलायेगा जिन स्वरों तक राग की छाया के अनुसार धैवत से सीधे जायेंगे।

मूलतः आरोह की ओर स्वरों की प्रवृत्ति चढ़ने की ओर होती है और अवरोह की ओर उतरने की। इस दृष्टि से आरोह की ओर दुर्गा और अवरोह की ओर गुणकली के स्वर रखे जायें तो—

आरोह—स रे म प ध सं

अवरोह—सं ध प म रे स

आचार्य बृहस्पति ने भुवनमोहिनी की सृष्टि की है। यदि इन सब स्वरों को आरोह क्रम में रख दिया जाये तो—

आरोह—स रे रे म प ध ध सं

हो जायेंगे जो दायिष्ठ नाट्यों के कनकांगी या मुखारी मेल की स्वरावली हैं।

यदि आरोह की ओर तिलंग और अवरोह की ओर धानी हो तो स्थिति यह होगी—

आरोह—स ग म प नी सं

अवरोह—सं नी प म ग स

उपरोक्त स्वरावली राग जोग की हो गई जोकि दाक्षिणात्य के रामामात्य का ‘चलनाट’ मेल होगा—स ग ग म प नी नी सं

इस प्रकार सिद्धान्त यह हुआ कि दो संवादी स्वरों को आरोह में तीव्र रखा और अवरोह में उतार दिया है।

आरोह—स ग म ध नी सं

अवरोह—सं नी ध म म स

उपरोक्त नया राग बन गया जिसका सिद्धान्त हुआ कि मध्यम का संवादी स्वर ध नी सं हुए। आरोह में रागेश्री और अवरोह में मालकंस हुए। उसी प्रकार एक नया स्वरूप निम्न हो सकता है—

आरोह—ध नि स ग म ध नि सं

अवरोह—सं ध नी प ग म रे स

‘ध नी प’ और ‘ग म रे’ संवाद गुच्छ है।

आचार्य बृहस्पति द्वारा रचित राग महालक्ष्मी के स्वर निम्न हैं—

आरोह—ध नि स रे नि स ग म, ध नि सं रे नि सं

अवरोह—सं ध नी प म, ग म रे स।

इसमें ‘नी स रे’ का जवाब ‘ग म प’ भी शामिल किया जा सकता है।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक असंख्य रागों की रचना हो चुकी है। इन रागों का वर्गीकरण शुद्ध, छायालग और संकीर्ण भेदों द्वारा किया गया है।

रामपुर के छम्भन साहब की परंपरा में राग निर्माण के कुछ नियम ‘संगीत-चिन्तामणि’ से उद्धृत किये जा रहे हैं—

(1) किसी भी ठाठ के कोमल स्वरों को तीव्र और तीव्र स्वरों को कोमल कर देना ‘ठाठ लौटाना’ कहलाता है। अमीर खुसरो ने इसी प्रकार का आश्रय लेकर अनेक रागों में परिवर्तन किया था। सेनियों की परम्परा में यह प्रभाव खुसरो की परम्परा से आया था।

काफी ठाठ को लौटाने से पूर्वी ठाठ बन जाता है, जैसे—

काफी ठाठ—स रे ग म प ध नि सं

|

पूर्वी ठाठ—स रे ग म प ध नि सं

पहले वसन्त काफी ठाठ में गाया जाता था। अमीर खुसरो ने ठाठ लौटाकर उसे पूर्वी टाट में कर दिया। यही इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) का वसन्त है, जो आजकल प्रचार में है।

श्री ठाठ भी इसी ढंग से काफी टाट के स्थान पर पूर्वी ठाठ में गाया जाने लगा है।

काफी ठाठ की घनाश्री से पूर्वी ठाठ की घनाश्री भी इसी प्रकार बनी है। जिसका मेल पुरियाघनाश्री में है। भातखंडे के साहित्य में इस घनाश्री की चर्चा नहीं है, किन्तु रामपुर के गायक इस घनाश्री को बरतते हैं।

खमाज टाट को लौटने से तोड़ी ठाठ बन जाता है।

खमाज ठाठ—स रे ग म प ध नि सं

तोड़ी ठाठ—स रे ग म प ध नी स

आसावरी ठाठ को लौटकर मारवा ठाठ का निर्माण किया गया है—

आसावरी—स रे ग म प ध नि सं

|

मारवा—स रे ग म प ध नी सं

(2) ठाठ के कुछ स्वरों को उलट देना और कुछ को जैसा का तैसा रहने देना दूसरा नियम है, जैसे—

भीमपलासी—नि स ग म प नि सं नि ध प ग रे स ।

भीमपलासी के निपाद और मध्यम को आरोह में और धैवत तथा ऋषभ को अवरोह में लौटकर और गांधार को जैसा का तैसा रखकर शाहजहां-कालीन शेख बहाउद्दीन ज़करिया ने मुलतानी का निर्माण इस प्रकार किया है—

मुलतानी— नि स ग म प नि सं नि ध प म ग रे स ।

(3) राग निर्माण का तीसरा नियम ठाठ के स्वरों का जैसा का तैसा रखते हुए उनकी गति में परिवर्तन करना और विश्रान्ति के स्वरों को बदल देना है। सोहनी, पूरिया तथा मारवा इस नियम के उदाहरण हैं।

(4) ठाठ भी लौटा जाए और विश्रान्ति-स्वर भी बदल जाए। मालकोस और हिंडोल इस नियम के उदाहरण हैं।

(5) किसी राग के स्वरूप और ठाठ को अक्षुण्ण रखते हुए उसमें एक स्वर की वृद्धि कर दी जाए। पूरिया से माली गौरा बनाने के लिए उसमें पंचम का सम्मिलित कर दिया जाना इस नियम का उदाहरण है।

(6) किसी राग में से एक स्वर कम करके उसकी गति को उन्मुख कर देना भी नवीन राग की सृष्टि करता है। तोड़ी में से पंचम निकालकर उसकी गति को मध्य धैवत की प्रधानता से उन्मुख किया गया है।

(7) एक जैसे स्वर-समुदाय दो विभिन्न ठाठों को लेकर आरोह में एक ठाठ और अवरोह में दूसरा ठाठ रखना भी नये राग के जन्म का कारण होता है। आरोह और अवरोह में कुछ स्वर सदृश होते हैं।

(8) एक ठाठ का पूर्वार्ध और दूसरे ठाठ का उत्तरार्ध लेकर भी नवीन राग का निर्माण किया जाता है। पूर्वार्ध में भैरवी और उत्तरार्ध में भैरव ठाठ के स्वर रखकर सेनिए अपना पीलू गाते हैं और उसे शुद्ध पीलू कहते हैं।

छम्मन साहब के दरवार में संगीत ग्रंथों पर भी विचार हुआ था, परन्तु इस विषय में उन्हें अधिक सफलता न मिली।

रामपुर-परम्परा के गुणियों का भारत के विभिन्न क्षेत्रों से संबंध

उत्तर प्रदेश में रामपुर के संगीत की सर्वश्रेष्ठ स्थिति

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विद्वानों तथा कलाकारों को दिल्ली का परित्याग करना पड़ा क्योंकि वहाँ वे स्वयं को अरक्षित अनुभव करने लगे थे। अतः निराश्रय होकर कलाकार वर्ग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसने लगे। उत्तर-प्रदेश की स्थिति सबसे विकट थी। यहाँ की कुछ देशी रियासतों के शासक संगीत-कला प्रेमी थे। उनमें रामपुर तथा अवध की रियासतें विशेष मशहूर थीं, जहाँ के नवाबों ने अपना संपूर्ण जीवन संगीत कला के उत्थान में लगा दिया। इन्हीं दोनों रियासतों में दिल्ली के कलाकारों को शरण मिली।

संगीत के इतिहास से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उत्तर-प्रदेश की रामपुर रियासत का संबंध दिल्ली दरबार से अधिकाधिक रहा है। अतः रामपुर भी दिल्ली के समान कला का केन्द्र बन गया। चतुर्थ अध्याय में यह बात पहले ही स्पष्ट कर दी गई है कि रामपुर रियासत की स्थापना सदारंग युग में ही हो चुकी थी। इस कारण रामपुर दरबार के कलाकारों का सम्पर्क दिल्ली दरबार के संगीतज्ञों से होता रहा है। इस बात की पुष्टि उस्ताद विलायत हुसैन खां ने अपनी पुस्तक 'संगीतज्ञों के संस्मरण' में की है। 'तानसेन की संतान और उनकी शिष्य-परम्परा' नामक अध्याय में पृ० 59 में यह वर्णन प्राप्त है—

“रामपुर के उमराव खां खण्डारे और उनके सुपुत्र रहमी खां तथा अमीर खां तानसेन घराने में बहुत प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं। ये तीनों ही ऊँचे दर्जों के बीनकार थे और ध्रुवपद पर भी उनका अच्छा अधिकार था। इन तीनों का नाम सारे हिन्दुस्तान में हुआ। विशेषकर अमीर खां तो बहुत ही प्रसिद्ध हुए। ये रामपुर के नवाब क़त्बे अली खां के दरबार के विशेष संगीतज्ञ थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीनकारी की तमाम खूबियों पर उनका पूरा-पूरा अधिकार था।”

वर्तमान पीढ़ी के अग्रगण्य कलाकारों की शिक्षा का रहस्य रामपुर-परम्परा से ही प्राप्त हुआ है, यह बात स्व० आचार्य बृहस्पति ने अपनी पुस्तक 'संगीत चिन्तामणि' के प्रथम खण्ड में पृष्ठ 355 पर कही है—

“यह तथ्य सुविदित है कि रविशंकर और निखिल बैनर्जी के सितार और

अली अकबर खां के सरोद की विश्वव्यापित शंकार का मूल उत्तर-प्रदेश की भूतपूर्व रियासत रामपुर के गुणग्राहक नरेशों और संगीत गुरुओं की उदारता में है। इन लोगों के सम्मान्य गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खां (रामपुर वालों की भाषा में बाबू उलाउद्दीन) ने वर्षों तक रामपुरीय गुणियों के चरणों में बैठकर संगीत साधना की और रामपुर से उपलब्ध ज्ञान का उदार वितरण अपने योग्य शिष्यों में किया।”

रामपुर के नवाब अपनी उदारता और गुण-ग्राहकता के लिए प्रसिद्ध थे। यही कारण है कि देश के हर कोने से अनेक गुणीजन यहां आते रहे और रामपुर-दरबार का आश्रय ग्रहण करते रहे। रामपुर-परम्परा को सुदृढ़ बनाने में जिन व्यक्तियों का हाथ रहा है उनका परिचय देना यहां उपयुक्त होगा।

बहादुर हुसैन खां—रामपुर दरबार में आने से पूर्व ये वाजिद अली शाह के परम प्रिय थे और उन्हें ‘जियाउद्दौला’ की उपाधि से विभूषित किया था। ये प्यारे खां के भांजे थे जिन्होंने इनको गोद लिया था। प्यारे खां ने बहुत प्यार से इनको पाला तथा सुरसिंगार की शिक्षा दी। बहादुर हुसैन खां मियां मनरंग के परपोते और सदारंग के सरपोते थे। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सदारंग के वंशज दिल्ली से आकर रामपुर में ही बस गए थे।

बहादुर हुसैन खां द्वारा रचित बहुत-सी बंदिशों, तराने व सरगमें प्रसिद्ध हैं। इनकी चीजों में सुर व लय का आनन्द प्राप्त होता है। यहां तक कि सनदपिया की जो ठुमरियां प्रचलित हैं वे बहादुर हुसैन खां की ही रचनाओं पर आधारित हैं। इन ठुमरियों में वही सुर तथा लय वैचित्र्य का अनोखापन है।

बहादुर हुसैन खां के प्रमुख शिष्यों में नवाब हैदर अली खां थे। वे विद्वान, लेखक, शायर, गायक तथा सुरसिंगारवादक थे। रामपुर के नवाबों ने अपने दरबार में हमेशा हिन्दू-ब्राह्मणों को प्रतिष्ठा दी है। आचार्य बृहस्पति के प्रपितामह महापण्डित दत्तराम जी बहादुर हुसैन खां के घनिष्ठ मित्र थे जिनको नवाब यूमुफ अली खां ने अपने दरबार में राजपण्डित का सम्मान प्रदान किया। इसी दरबार के ‘दाग’ और ‘अमीर’ जैसे शायर भी बहादुर हुसैन खां के मित्र थे। महाकवि ग्वाल भी इस समय रामपुर में थे जो पं० दत्तराम जी के गुरुभाई थे।

अमीरखां बीनकार और ध्रुवपदगायक

अमीरखां उमराव खां के सुपुत्र और बहादुर हुसैन खां के दामाद थे। इनका जन्म स्थान बांदा था किंतु आपने 1857 ई० के बाद रामपुर दरबार में शरण ली। आपके इकलौते पुत्र उस्ताद वजीर खां हुए जो दरबार के प्रसिद्ध कलाकार हुए। बाल्यकाल में ही ये अनाथ हो गये किंतु नवाब हैदर अली खां ने वजीर खां को संगीत की शिक्षा दी। अमीर खां के अन्य शिष्य मुहम्मद करम हमाम थे

जिन्होंने 'मअदन्-उल्-मूसिकी' नामक पुस्तक लिखी है।

रामपुर दरबार के आश्रित अन्य कलाकार

रामपुर दरबार में आश्रय लेने के लिए अनेक संगीतज्ञ आए जिनका उल्लेख करना उपयुक्त होगा। बाकर अली खां कच्चा बच्चे दिल्ली निवासी थे। आप रामपुर दरबार में 1868 में आए। आप खयाल शैली में निपुण थे। हैदर बक्श कुशल सारंगी वादक पंजाब के रहने वाले थे। आपका सबसे योग्य शिष्य मीर बुनियाद हुसैन बहुत गुणी सारंगीवादक हुआ। मौधूखां कुशल तबलावादक फर्रुखाबाद के निवासी थे। आप नवाब कल्बे अली खां के दरबार में थे।

कुछ गायिकाओं के नाम उल्लेखनीय हैं जो रामपुर-दरबार के आश्रित रहीं। कानपुर निवासी अमानी जान ठुमरी तथा खयाल सुन्दर ढंग से गाती थीं। जादी गायिका झूमन गायिका और मम्मी गायिका भी रामपुर में रहती थीं। इनके कण्ठ अत्यन्त मधुर थे और खयाल, टप्पा शैलियों का गायन सुन्दर ढंग से करती थीं।

नवाब हैदर अली खां—आपका जन्म 1846 ई० में एक गायिका के गर्भ से हुआ था। आप बहुत ज्ञानी थे, कई भाषाओं का आपको ज्ञान था। आप अच्छे शायर व लेखक भी थे। किंतु आपकी सबसे श्रेष्ठ बात यह थी कि आप एक कुशल सुरसिगावादक भी थे। आपकी संगीत शिक्षा बासत खां, सादिक अली खां और बहादुर हुसैन खां के द्वारा हुई थी। आपकी इच्छा थी कि संगीत विद्या पर एक अच्छा ग्रन्थ लिखा जाए जिसमें सबकी समस्याओं का समाधान हो और संगीत के रहस्यों का भी उद्घाटन हो। किंतु यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। आपने ही बजीर खां को वीणावादन की विधिवत् पूर्ण शिक्षा दी थी। आपके दूसरे प्रमुख शिष्य आपके अपने ही पुत्र साहबजादा सआदत अली खां 'छम्मन साहब' थे। हैदर अली खां को संगीत की शिक्षा बहुत कष्टों को सहने के बाद प्राप्त हुई थी। आपकी यह इच्छा थी कि भावी पीढ़ियों के लिए संगीत शिक्षा का मार्ग सरल हो जाए। इसी के फलस्वरूप स्व० भातखंडे जी को तथा स्व० अलाउद्दीन खां जो अन्य प्रान्तों के रहने वाले थे, रामपुर-परंपरा का रहस्य प्राप्त हुआ।

छम्मन साहब—'लाली' नामक गायिका आपकी माता थीं और इनकी बहन चन्द्रभागा भैया गनपतराव की माता थीं। इस प्रकार छम्मन साहब और भैया गनपतराव जी परस्पर भाई थे। आपको सुरसिगार की शिक्षा हैदरअली खां साहब से प्राप्त हुई। आपको सत्तह सी होरियां और ध्रुवपद याद थे। आप स्वयं अच्छे रचनाकार थे। 'सादत' नाम से आपने बहुत-सी बंदिशें, सरगमें तथा ठुमरियां स्वर लिपि सहित लिखी हैं। आपने 1918 ई० में दिल्ली अखिल भारतीय संगीत परिषद् में मल्लार के प्रकारों का एक निम्बन्ध पढ़ा था। इनकी रचनाएं 'नगमात्-उल्-हिन्द' और 'क्रमिक पुस्तक मालिका' में प्रकाशित हुई हैं। दूसरी

पुस्तक—‘फलसफ़ए मूसिका’ भी आपने लिखी थी किन्तु इसका केवल एक ‘स्वराध्याय’ ही प्राप्त है जो इस समय रामपुर की रक्षा लाइब्रेरी में उपलब्ध है। आपके प्रमुख शिष्यों में स्व० भातखण्डे जी का नाम उल्लेखनीय है।

सहस्रवान और रामपुर

सूफियों द्वारा कव्वाली का प्रचार धर्म प्रचार हेतु होता गया और मुहम्मद शाह रंगीले के युग में कव्वाल वच्चे ध्रुवपद गायकों के साथ मुकाबला करने लगे। आम जनता कव्वाली में खूब रस लेने लगी। इसी कारण ‘सदारंग’ को खयालों की रचना करनी पड़ी यद्यपि वे स्वयं ध्रुवपद गायक थे। इनकी खयाल रचनाएं बहुत सुन्दर थीं और आम जनता में लोक-प्रिय हो गईं। इसी कारण लोग सदारंग को ही खयाल का आविष्कारक कहने लगे।

सदारंग के युग में प्रत्येक राग को कलावन्त और कव्वाल वच्चे अपने-अपने ढंग से गाने लगे इसीलिए बहुत से रागों के दो स्वरूप हो गए। रामपुर-दरबार में भी दोनों प्रकार की शैलियां प्रचलित थीं। सदारंग के वंशज बहादुर हुसैन थे और कव्वाल वच्चों में बाकर अली। इसलिए कलाकारों ने दोनों से विद्या प्राप्त की जैसे घग्घे खुदावख़श और अल्लादिया खां।

सहस्रवान घराने के इनायत हुसैन खां ने रामपुर के बहादुर हुसैन खां से राग ज्ञान की शिक्षा प्राप्त की और वे हद्दूखां के भी शिष्य हुए क्योंकि तान, पलटे, फिरत और जमजमे की शिक्षा कव्वालों के पास थी। इस युग के गुरु व उस्ताद विद्या रहस्य सभी शिष्यों को नहीं बताते थे। अपनी सन्तानों को ‘खासोखास’ शिक्षा प्रदान करते थे जिसमें परंपरा के ‘रहस्य’ बताते थे। अपने दूसरे शिष्यों को, जो रिश्तेदार हैं अथवा दामाद भी हैं, उनकी शिक्षा इतनी ही होती थी कि वे अपनी जीविका कमा सकें। तीसरे प्रकार की आम शिक्षा होती थी जो केवल शिष्य ही होते थे, इनकी विद्या को कामचलाऊ ही कहा जा सकता है। इस प्रकार घरानों के विकास से विद्या के रहस्य गुप्त हो गए और आम जनता को उपलब्ध नहीं हुए।

इनायतहुसैन खां अपने युग के प्रसिद्ध गायक थे। आपने रामपुर परंपरा से सैंकड़ों तराने, सरगमें प्राप्त कीं और आपके उस्ताद बहादुरहुसैन खां ने कुछ खास रागों की शिक्षा आपको दी, जैसे—गोड़ सारंग, देस आदि आपकी अपनी रचनाएं भी देश में प्रसिद्ध हुईं। आपका सम्मान ग्वालियर, हैदराबाद और रामपुर रियासतों में हुआ। आपके प्रमुख शिष्यों में रामकृष्ण बजे बुवा, छज्जू खां, नज़ीर खां, खादिम हुसैन खां और मुश्ताक हुसैन खां थे। आपने अपनी तीन पुत्रियों के विवाह मुश्ताक हुसैन खां, बड़ीदेवाले निसारहुसैन खां और गुलाम मुस्तफा के पिता से किए।

“इनायत हुसैन खां के छोटे भाई अली हुसैन खां महाराज गायकवाड़ के दरबार में थे। ये प्रसिद्ध वीनकार थे। रामपुर के बहादुर हुसैन खां से भी इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इनके एक और भाई मुहम्मद हुसैन खां थे जो प्रसिद्ध वीनकार हुए, वे रामपुर के नवाब हामिद अली खां के दरबार में थे।”¹

हैबर खां—सहसवान के गवैयों में इनका नाम आता है। ये बंबई में भी बहुत रहे और महाराष्ट्र में अपना यश फैलाया। अंत में रामपुर के नवाब हामिद अली खां के दरबार में आ गए।

मुस्ताक हुसैन खां—आपका जन्म उत्तर प्रदेश के जिला बदायूं के सहसवान स्थान में हुआ था। आपके कथनानुसार आपने ग्यारह उस्तादों से संगीत शिक्षा प्राप्त की थी। बचपन में अपने पिता से ही आपने शिक्षा प्राप्त की थी। आपने इनायत हुसैन खां से, जो उनके ससुर थे, सत्रह वर्ष शिक्षा प्राप्त की। आप 1909 ई० में रामपुर-दरबार में आ गए। यहां आपको विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। 1956 ई० में आप दिल्ली भारतीय कला केन्द्र में शिक्षक के नाते संगीत सेवा करने लगे जहां पर आपने अनेकों शिष्यों का निर्माण किया। इनके शिष्यों में वर्तमान गायिका श्रीमती सुलोचना बृहस्पति ने प्रसिद्धि अर्जित की है। खां साहब को 1958 ई० में ‘पद्मभूषण’ उपाधि का सम्मान प्राप्त हुआ। आपके पास सुन्दर बंदिशों का भण्डार था। आपने सपाट तानों पर विशेष अभ्यास किया था जो लम्बी सांस में कहते थे।

आपके ज्येष्ठ पुत्र स्व० इशितयाक हुसैन खां भी प्रसिद्ध गायकों में थे—जिन्होंने अनेक शिष्यों का निर्माण करके संगीत की सेवा की।

अवध के कलाकार और रामपुर

मुगल साम्राज्य की अवनति के बाद संगीत कला का केन्द्र अवध भी था। यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के पूर्व में है जिसमें लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, बांदा, जौनपुर आदि प्रमुख स्थान हैं। संगीत इतिहास के प्रसिद्ध लेखक मुहम्मद करम इमाम ने 1855 में अपनी पुस्तक “मअदन्-उल्-मूसिकी” में अपने समय के सभी प्रसिद्ध कलाकारों और विद्वानों का वर्णन किया है। आपके पूर्वज अकबर के राज्यकाल में ही अवध के एक परगने के चौधरी नियुक्त थे। इनके पिता का नाम मुहम्मद दिलावर अली खां था। मुहम्मद करम इनाम को अनेक कलाकारों का सत्संग प्राप्त था और उन्हें संगीत सुनने का मौका मिला। इनकी राय में उस समय के कलाकारों का चरित्र गिर रहा था और कला अवनति की ओर अग्रसर हो गई थी।

1. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० 167।

अवध के नवाबों की रुचि ठुमरो चैती और कजरी सुनने के लिए हो गई थी, अतः दरबार में ये शौलियां प्रतिष्ठित हुईं। करम इमाम के अनुसार बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के पोते वजीर मिर्जा (कदर पिया) ठुमरी के प्रवर्तक हैं। इनकी बहुत-सी ठुमरियां 'क्रमिक पुस्तक मालिका' में दी गई हैं। लखनऊ की ठुमरियों को बोलवांट की ठुमरियां कहते हैं। नर्तक इन्हीं ठुमरियों पर भाव प्रदर्शन करते हैं।

“‘सदारंग’ की सन्तानों में प्यार खां के पौत्र एवं जाफ़र खां के पुत्र सादिक अली खां ‘राहतुद्दौला’ ने ठुमरी को ‘षड्ज-चालन’ के द्वारा एक उत्तम कला बना दिया। रामपुर के साहबज़ादा हैदर अली खां इनके भी शिष्य थे।”¹

मुहम्मद करम इनाम ने ठुमरी और ग़ज़ल गाने वाली गायिकाओं का भी जिक्र किया है जिसमें लखनऊ की धूमनवाई और हुसेनीवाई और फर्रुखाबाद की लज्जत वख़्श जो रामपुर के नवाब क़त्वे अली खां के दरबार में थी।

अवध के नवाब वाजिद अली शाह गुणी थे और गुण-ग्राहक भी। इनके सम-कालीन रामपुर के नवाब अहमद अली खां भी विद्या का आदर करते थे। अतः अवध के कलाकारों का संपर्क रामपुर-दरबार के कलाकारों से अवश्य होता होगा। करम इमाम ने मियां जानी और गुलाम रसूल की बहुत प्रशंसा की है जो रामपुर के ही निवासी थे। रामपुर के वजीर खां और यूसुफ़ खां के नाना लखनऊ के निवासी मियां शंकर थे और मुहम्मद खां मामा थे।

पं० भोलानाथ भट्ट—आपके पिता मोती लाल थे, यह दरभंगा जाकर बसे थे और आपने इलाहाबाद में गंगा तट पर अपना जीवन बिताया। आपको आनुवंशिक संगीत-शिक्षा तो प्राप्त थी, किन्तु आपको घूमने का बहुत शौक था। अतः आपने देश के अनेक स्थानों में घूम-घूमकर अच्छी-अच्छी बंदिशों का संग्रह किया। रामपुर के वजीर खां के पास और भैया गनपतराव के पास भी आप सदा जाते रहे। आपने बहुत से शिष्यों का निर्माण किया जिसमें बम्बई की श्रीमती माणिक वर्मा और इस लेखिका को भी प्रयागवासी होने के नाते भट्ट जी से सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपनी सहोदरा श्रीमती सुलोचना (दिल्ली निवासिनी) के साथ सहस्रों बंदिशें भट्ट जी से प्राप्त कीं।

ग्वालियर घराना और रामपुर

ग्वालियर की भूमि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि 15वीं शताब्दी से इसका नाम ध्रुवपद गायन के विकास के लिए प्रसिद्ध रहा है। चार सौ वर्षों के अन्तर्गत अनेक उथल-पुथल हुए। किन्तु जब से घरानों की प्रथा चली है तब

से ग्वालियर की गायकी का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। ग्वालियर उत्तर प्रदेश से विल्कुल सटा होने से दिल्ली और रामपुर के कलाकार हमेशा यहाँ के दरबार में आते-जाते रहे। अतः रामपुर-परंपरा का प्रभाव यहाँ की गायकी पर भी अवश्य पड़ा।

इस घराने के सर्व प्रथम गायक अब्दुल्ला खां और कादिर वख्श दोनों भाई हुए हैं। कादिर वख्श के दो पुत्र नत्थन खां और पीर वख्श थे। नत्थन खां के पुत्र हद्दू खां, हस्सू खां और नत्थू खां थे जिन्होंने खयाल गायकी में एक नया मोड़ दिया। इसी कारण ग्वालियर घरानों की गायकी तान प्रधान हो गई और महाराष्ट्र में अधिक लोकप्रिय हुई। हद्दू खां के प्रमुख शिष्यों में वाल कृष्ण बुआ इचलकरंजीकर और शंकर राव पण्डित थे।

भैया गनपत राव—ये ग्वालियर राजघराने के थे। आपका जन्म प्रसिद्ध गायिका चन्द्रभागा के गर्भ से हुआ था। रामपुर के छम्मन साहब आपके मौसेरे भाई थे। आवाज की खराबी के कारण आपने हारमोनियम पर अभ्यास किया।

“जिस प्रकार सदारंग की प्रतिभा ने खयाल-गायन को प्रभावित किया, उसी प्रकार भैया साहब के चिन्तन ने ठुमरी को लोकप्रिय किया।”¹

वर्षों तक आप रामपुर में रहे। नवाब हामिद अली आपका बहुत आदर करते थे। भैया साहब की दृष्टि बहुत पैनी थी। षड्ज चालनक्रिया द्वारा आप नये-नये रास्ते निकालते थे जिसको सुनकर श्रोतागण चमत्कृत हो जाते थे।

हाफ़िज अली खां—आपके प्रपितामह व्यापारी थे और घोड़ों के व्यापार के लिए भारतवर्ष आये थे। पहले रीवां-नरेश के प्रोत्साहन से इनके पूर्वजों ने ध्रुवपद, होरी और वीन की शिक्षा प्राप्त की तत्पश्चात् ग्वालियर दरबार में आश्रय लिया। हाफ़िज अली खां की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता नन्हे खां के पास हुई। उसके बाद मथुरा के गणेशी लाल चौबे से आपने होरी और ध्रुवपद सीखा। उसके बाद वे रामपुर दरबार में रहे। यहाँ छम्मन साहब और वजीर खां के सत्संग का आप को लाभ प्राप्त हुआ जिससे परंपरागत रागों का मर्म ज्ञात हुआ। आप अपने युग के सर्वश्रेष्ठ सरोदवादक थे। देश की स्वतंत्रता के बाद आप भारतीय कला केन्द्र दिल्ली में शिक्षक रहे। आपके पुत्रों में अमजद अली खां प्रतिभाशाली हैं।

मैहर और रामपुर

रामपुर परंपरा में दीक्षित स्व० अलाउद्दीन खां का जन्म स्थान त्रिपुरा में था। बाद में आप कलकत्ता के हाबू दत्त के पास सीखने आए जो रामपुर के वजीर खां के शिष्य थे। तत्पश्चात् 1911 ई० में आप मुक्तागाछा के जमींदार जगतकिशोर

1. आजकल (उर्दू), पृ० 71।

आचार्य के पास गए जहाँ रामपुर के अहमद अली खां का सरोद सुना। अलाउद्दीन ने इनसे ही सरोद सीखना प्रारंभ कर दिया। बाद में आप रामपुर आए और अहमद अली खां के पिता आबिद अली खां से शिक्षा प्राप्त की। रामपुर बँड में आपने नौकरी भी कर ली थी। चार वर्षों बाद आप मैहर चले आए और मैहर बँड की स्थापना की। 1935 ई० में उदयशंकर के दल के साथ आप विदेश गए।

स्व० अलाउद्दीन खां के प्रमुख शिष्यों में पं० रविशंकर, सुपुत्र अली अकबर और सुपुत्री अन्नपूर्णा हैं जिन्होंने संगीत जगत में चार चांद लगा दिए हैं। अपने शिष्यों के कारण ही गुरु को विश्व ख्याति मिली है।

महाराष्ट्र के संगीतकार और रामपुर

एक ओर उत्तर भारत से बहुत से संगीतज्ञ कला का प्रचार करने के लिए दक्षिण के क्षेत्रों में गए जहाँ उनको अपनी जीविका कमाने का साधन भी प्राप्त हुआ। दूसरी ओर महाराष्ट्र के संगीत-प्रेमी लोग उत्तर भारत के उन-उन स्थानों में संगीत सीखने आये जहाँ पर विद्या के केन्द्र थे, जैसे—रामपुर, ग्वालियर, मथुरा, लखनऊ आदि।

पं० विष्णु नारायण भातखण्डे—आपका जन्म महाराष्ट्र में 10 अगस्त, 1860 ई० में हुआ था। आपने वीणावादन की शिक्षा रामपुर के बहादुर हुसैन खां के शिष्य मुहम्मद हुसैन खां से प्राप्त की थी। तात्पर्य यह है कि भातखण्डे जी की प्रारम्भिक शिक्षा रामपुर-परम्परा से ही शुरू हुई। आपने बी० ए० डिग्री के साथ कानून की परीक्षा भी पास की थी। तीस वर्ष की आयु में आपने संगीत के विभिन्न ग्रन्थों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। चवालीस वर्ष की आयु में आप देश-भ्रमण के लिए निकले। आपने दक्षिण मद्रास से लेकर रामेश्वरम् तक की यात्रा की। उत्तर में गुजरात के बहुत से स्थानों पर गए।

रामपुर के तत्कालीन नवाब हामिद अली खां (1889-1930 ई०) से आपका घनिष्ठ परिचय था। नवाब साहब प्रतिवर्ष बम्बई आते थे। उनके साथ रामपुर के कवि, संगीतज्ञ और पंडित भी आते थे। वजीर खां बम्बई में हमेशा नवाब साहब के साथ जाया करते थे। भातखण्डे जी ने वजीर खां से बहुत से राग प्राप्त किए जैसे 'मियां की सारंग'। "1908 ई० में काले नजीर खां बम्बई पहुंच चुके थे। ये ध्रुवपद, सादरा, खयाल—सभी कुछ अच्छा गाते थे। ये भातखण्डे जी के घनिष्ठ मित्र थे, 'लक्ष्य-संगीत' की रचना इस घनिष्ठता का ही परिणाम है।"¹

इसके बाद भातखण्डे जी का परिचय रामपुर के ठाकुर नवाब अली खां से हुआ और बम्बई में दोनों की मुलाकात हुई तथा पत्र-व्यवहार भी हुए। ठाकुर

1. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृ० 195।

साहब ने ही भातखण्डे जी का परिचय छम्मन साहब से करवाया। रामपुर के इतने गुणियों से संपर्क होने के कारण ही भातखण्डे जी को रामपुर-परम्परा के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त हुआ। उनको नवाब हामिद अली खां, मुहम्मद अली खां और वजीर खां का शिष्य होना पड़ा। क्रमिक पुस्तक मालिका के विभिन्न भागों में रामपुर से प्राप्त बंदिशों का ही संग्रह है।

आज संगीत जगत् में स्व० भातखण्डे जी द्वारा संगृहीत पुस्तकों का मूल्य अधिक है क्योंकि संगीत के विद्यार्थियों को वे उपलब्ध हैं। भातखण्डे का संगीत साहित्य देश में शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गया और व्यापक रूप से इसका प्रयोग होने लगा। रामपुर-परम्परा को स्व० भातखण्डे जी पर गर्व है कि उन्होंने इस परम्परा की अच्छी चीजें सुरक्षित रखीं और आम जनता को उपलब्ध कराईं। देश का कोई भी संगीत विद्यालय ऐसा नहीं होगा जहां पर भातखण्डे साहित्य से शिक्षा न दी जाती होगी। अतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि रामपुर परम्परा का प्रचार देशव्यापी हो रहा है।

पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर—आपका जन्म महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले में हुआ। बाल्यकाल से ही आपको संगीत के प्रति आकर्षण था और मिरज-दरबार के राजगायक पं० बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के पास आप संगीत की शिक्षा लेने लगे। आपके गुरु ने ग्वालियर में हद्दू खां से शिक्षा प्राप्त की थी। ग्वालियर और रामपुर का सम्बन्ध हम ऊपर बता चुके हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उनका रामपुर-परम्परा से सम्बन्ध कहा जा सकता है।

1895 ई० में आप भी संगीत-प्रचार हेतु उत्तर भारत में आए। सबसे पहले आपने सन् 1901 ई० में लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की। फिर भारत के अन्य बड़े-बड़े शहरों में भी विद्यालय स्थापित किए।

महाराष्ट्र के दोनों 'विष्णु द्वय' उत्तर भारत में संगीत के रहस्यों की जानकारी के लिए आए क्योंकि उस समय उत्तर भारत की रियासतों में संगीत के उच्च कलाकार रहते थे और जिन्हें सदारंग परम्परा के रागों का रहस्य ज्ञात था। ये कलाकार रामपुर, अवध, ग्वालियर में रहते थे। भातखण्डे जी और पलुस्कर जी दोनों ने संगीत का प्रचार सभ्य समाज में तो कर दिया किन्तु उन कलाकारों को सभ्य समाज से अवगत नहीं कराया जिन्होंने उन्हें सदारंग परम्परा का ज्ञान दिल खोलकर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग तानसेन, सदारंग का गुणगान तो करते हैं किन्तु उनके गुणों का रहस्य क्या था, इससे अनभिज्ञ हैं।

श्री कृष्णरातनजंकर—आपका जन्म दिसम्बर, 1900 ई० में बम्बई में हुआ था। आप भातखण्डे जी के प्रमुख शिष्यों में थे जिन्होंने उनके विद्यालय मैरिस कॉलेज लखनऊ की 32 वर्षों तक सेवा की। आपने भातखण्डे जी के विचारों को और रामपुर-परम्परा से प्राप्त उनके संग्रह को वर्षों तक प्रकाशित करके प्रचार

किया। इसमें उन्हें अपूर्व सफलता मिली। आज इस कॉलेज की प्रतिष्ठा आपके ही परिश्रम का फल है।

आगरा घराना और रामपुर

‘आगरा-घराने’ का उद्गम कव्वाली गायकी से हुआ है क्योंकि सदारंग के युग में ध्रुवपद गायगी और कव्वाली दोनों ही प्रचलित हो गई थी। इस युग का समाज कविता, खयाल और कव्वाली पसन्द करता था। श्रोताओं की सुर, लय के भाव पर भी दृष्टि थी। अतः दोनों प्रकार की शैलियों को सीखने की रचि कुछ कलाकरों में थी। आगरा घराने में खयाल गायकी का प्रारम्भ घग्घे खुदाबख्श ने किया जिन्होंने सदारंग के वंशजों से शिक्षा प्राप्त की थी। रामपुर के नवाब कत्वे अली खां आपके गाने से प्रसन्न हुए थे। इनके पुत्र गुलाम अब्बास खां भी इनके साथ रामपुर गए थे।

गुलाम अब्बास खां ने अपने पुत्री के पुत्र को गोद ले लिया था और उसे संगीत की शिक्षा दी। यहीं बालक फ़ैयाज खां थे जिनका जन्म रंगीले घराने में हुआ था और संगीत शिक्षा आगरे घराने में हुई। इस कारण आपका व्यक्तित्व बिल्कुल निराला था। आपकी गायन शैली सरस और भावपूर्ण होती थी। ब्रजभाषा आगरा और वृन्दावन की मातृभाषा है अतः यहां के गायकों की वंदिशें भाषा की दृष्टि से शुद्ध होती हैं।

“फ़ैयाज खां स्वयं एक ‘घराना’ थे। ईश्वर की ओर से आये थे, उसी की ओर चले गए। उनका ढंग उनके लिए ही था, उन्हीं के साथ ही गया।”¹

कलकत्ता में बसे रामपुर के गुणी

बीसवीं शताब्दी में कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली संगीत कला के केन्द्र बन गए जहां पर कला की परख करने वाले श्रोताओं की भरमार है और साथ ही गुण हासिल करने की चाह भी।

रामपुर के बहुत से गुणी लोग यहां आकर बस गए। उस्ताद अहमद अली खां उस्ताद अलाउद्दीन खां को अपने साथ बंगाल ले आये। संगीत विद्या का प्रचार करने की प्रेरणा आपको रामपुर से ही मिली।

दबीर खां—‘उस्ताद दबीर खां’ के पौत्र उस्ताद दबीर खां बहुत दिनों से कलकत्ता में बस गए। उन्हें एकेडमी-पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनके पास उनकी परम्परा के आनुवंशिक रहस्य लिपिबद्ध रूप में थे।²

1. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृ० 159।

2. संगीत चिन्तामणि (संशोधित), पृ० 364-65।

“बंगाल में रामपुर परम्परा अत्यन्त सम्मानित रही है। कलकत्ता की कई निजी गोष्ठियों में ‘एमनी-वसंत’ और ‘रामा तोड़ी’, रामपुर-परम्परा की गायिका श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी (बृहस्पति) ने विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की।”¹

“राग-तत्त्व के मर्मज्ञ एवं अधिकारी व्यक्तियों के द्वारा नवीन रागों के निर्माण को रामपुर-परम्परा ने सदैव सम्मान दिया है। बंगाल में इस प्रवृत्ति का सम्मान विष्णुदत्त रामपुरीय प्रभाव है।”²

उपसंहार—उत्तर भारतीय संगीत में घरानों का प्रचलन कुछ सदियों पूर्व ही हुआ है। मुगल दरबारों के शासक सदैव से कलाकारों के आश्रयदाता बने रहे किन्तु जब मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हुआ उस समय केन्द्रीय शक्ति क्षत-विक्षत हो गई और विभिन्न रियासतों का जन्म हो गया। विद्वानों और कलाकारों ने इन रियासतों में जाकर शरण ली। अधिकांश रियासतों के शासकों ने इन कलाकारों को सम्मान दिया। कला का विकास और प्रोत्साहन इन्हीं कलाप्रेमी शासकों के द्वारा मिलता रहा। रामपुर, अवध, ग्वालियर, इन्दौर, पटियाला, जयपुर रियासतों का नाम संगीत के इतिहास में प्रसिद्ध है।

तेहरवीं शताब्दी में अमीर ख़ुसरो ने अपनी परम्परा का प्रचलन किया जो आगे चलकर तानसेन द्वारा विकसित हुई। उस समय सम्पूर्ण भारत में संगीत परम्परा एक ही थी। अठारहवीं शताब्दी में सदारंग परम्परा का प्रारंभ हुआ जिसने पूरे देश को प्रभावित किया। इस परम्परा को प्रारम्भ हुए अभी ढाई सौ वर्ष ही हुए हैं किन्तु इसकी लोकप्रियता अभी तक संगीत-जगत में है।

रियासतों के बनने के बाद कलाकारों ने शहरों के नाम पर ही घरानों के नाम रख दिए। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कलाकारों के अपने-अपने वर्ग बन गए। सबने अपनी-अपनी शैलियों को श्रेष्ठ माना है। इसीलिए आज देश के हर कोने में एक घराने ने जन्म ले लिया—इससे संगीत कला को हानि हुई। परम्परागत सिद्धान्त लुप्त हो गए।

श्री वा० न० देशपांडे जी के शब्दों में—

“इन घरानों की इससे भी पहले की परम्परा देखें, तो विश्वास है कि वह दिल्लीपति मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (लगभग 1719 से 1749) के जमाने के ख्यातनाम एवं आद्यख्यालिया सदारंग तक जा पहुंचेगी। मतलब, घरानों का यह व्यवहार आज लगभग दो-सवा दो सौ वर्षों से चला आ रहा है। कहने का मतलब यह है कि गायकी के सारे घरानों का बीज अतीत की सामन्तशाही में ही था।”³

1. संगीत चिन्तामणि (संशोधित), पृ० 364, 95।
2. वही।
3. घरानेदार गायकी, देशपांडे, पृ० 124।

रामपुर की परम्परा जिसको सेनिया घराना भी कहते हैं—सदारंग से संबंधित है। इस शैली में स्वर और ताल की शिक्षा का विशेष महत्त्व है। किस विधि से आवाज तैयार करवाना चाहिए, गायकी के विभिन्न कायदे, स्वरों की लाग-डॉट पलटे आदि किस प्रकार गले में उतारे जायें इस पर विशेष विचार हुआ है। लय और ताल की शिक्षा के साथ-साथ भाषा, भाव और साहित्य के ज्ञान की आवश्यकता भी समझी गई है।

मुआरिफुन्नगमात की रचना और 'लक्ष्य संगीत' पर रामपुर-परम्परा का प्रभाव

जिस प्रकार रामपुर दरबार के नवाबों को संगीत-कला से प्रेम था उसी प्रकार रामपुर की प्रत्येक रियासत के ताल्लुकेदारों और रईसों को भी संगीत से लगाव था। जिला सीतापुर के अकबरपुर के रईस राजा मुहम्मद नवाबअली खां का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने जीवन पर्यन्त इस कला की साधना की थी। आप ठाकुर नवाब अली खां के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपने ज्ञान का प्रचार जनता में करने की इच्छा से आपने जो विद्या अपने गुरुओं से प्राप्त की थी उसको एक ग्रन्थ में संजोकर प्रकाशित करवायी। इस पुस्तक का नाम आपने 'मुआरिफुन्नगमात' रखा जो तीन खण्डों में प्रकाशित हुई है। प्रथम खण्ड में रागों के 'लक्षणगीत' दिये गये हैं और द्वितीय, तृतीय खण्डों में ध्रुवपद व होरी के गीतों का संकलन है। यह पुस्तक आपने उर्दू भाषा में लिखी थी, बाद में इसका हिन्दी अनुवाद भी संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित हो गया है।

ठाकुर नवाब अली द्वारा संगीत प्रचार—ठाकुर साहब की प्रारंभिक संगीत शिक्षा लाहौर के काले खां के पास हुई थी। बाद में आपने उस्ताद नज़ीर खां और मुहम्मद अली खां से शिक्षा प्राप्त की थी। ठाकुर साहब को स्वयं हारमोनियम बजाने का भी शौक था, आपने सितार बजाने का भी बहुत अभ्यास किया था। किन्तु सितार बजाने में पूर्ण सफलता नहीं मिलने से आपने सितार छोड़कर विभिन्न गायन शैलियां सीखने की ओर रुचि बढ़ाई और ध्रुवपद-ध्रुमार गायन पर अभ्यास करते रहे। रामपुर के उस्ताद मुहम्मद अली खां से आपने सैंकड़ों बंदिशें सीखीं और सभी चीजों को अपनी पुस्तक 'मुआरिफुन्नगमात' में प्रचार हेतु प्रकाशित करवा दिया। इस पुस्तक की भूमिका में ठाकुर नवाब अली ने लिखा है कि—

“इस युग में ऐसे ग्रन्थ की जरूरत है जिसमें संगीत के नियमों को व्यवस्थित कर दिया जाये, संगीत शास्त्र को भी सरलतम ढंग से सभी लोगों तक पहुंचाया जाये।”¹

स्व० भातखण्डे जी आपके परम मित्र और परम स्नेही थे। ठाकुर साहब

1. मुआरिफुन्नगमात।

ने हजारों गीतों का संग्रह करने में इनकी मदद की थी। लखनऊ के मैरिस कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक की स्थापना और प्रबन्ध में भी आपने उनकी पूरी सहायता की और अपना सहयोग अंत तक दिया। लखनऊ के राय उमानाथ बली भी ठाकुर साहब के परम मित्र थे जिन्होंने मैरिस कॉलेज की उन्नति का सदा खयाल रखा।

मुआरिफुन्नगमात ग्रन्थ का महत्त्व

इस पुस्तक का महत्त्व संगीत के क्षेत्र में सदा बना रहेगा—कारण बड़े-बड़े उस्तादों और कलाकारों द्वारा गाई हुई बंदिशों का संकलन इसमें प्राप्त होता है। प्रत्येक बंदिश के ऊपर ठाकुर साहब ने यह स्पष्ट रूप से लिखा दिया है कि उन्होंने इस चीज को किससे प्राप्त किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि इस पुस्तक की चीजें निश्चित रूप से प्रामाणिक हैं और उनका राग रूप भी शास्त्रीय स्तर पर ठीक है। संगीत की वर्तमान पीढ़ी के लिए इस ग्रन्थ का बहुत महत्त्व है क्योंकि रामपुर सदारंग परम्परा में गाई जाने वाली चीजों का संकलन निश्चित रूप से संगीत के लिए अमूल्य धन है।

स्व० आचार्य बृहस्पति के विचार से “ठाकुर साहब शास्त्र के क्षेत्र में भातखण्डे जी से प्रभावित थे किन्तु कला के क्षेत्र में नहीं। ठाकुर साहब बासत खां के पुत्र उस्ताद मुहम्मद अली खां के शिष्य थे।”¹ इन ग्रन्थों में जो बंदिशें दी हुई हैं, उनकी स्वरलिपि में भातखण्डे जी की स्वरलिपियों से अन्तर है।²

भातखण्डे जी द्वारा रचित लक्षणगीतों के विषय में ठाकुर साहब कहते हैं कि—

“मुझे यह आशंका है कि कदाचित् इन लक्षणगीतों पर यह आक्षेप किया जाए कि इनमें कोई विशेषता नहीं है और न कोई खूबसूरत तान है।” रागों के स्वरूप के संबंध में भी कई स्थानों पर ठाकुर साहब व भातखण्डे जी के विचार भिन्न हैं। जैसे ललित में कोमल ध्रुवत का प्रयोग रामपुरी परम्परा का है जबकि भातखण्डे जी ने ललित में तीव्र ध्रुवत का प्रयोग किया है।³

मुसलमान कलाकार श्रद्धालु होते हैं और बुजुर्गों का आदर करते हैं। किन्तु संस्कृत भाषा के अज्ञान के कारण वे प्राचीन ग्रन्थों को समझ नहीं सके। अतः गलत धारणाएं देश में फैल गयीं जिसका निराकरण बाद में स्व० आचार्य बृहस्पति द्वारा किया गया।

1. संगीत चिन्तामणि, आ० बृहस्पति, पृ० 413।
2. वही।
3. वही, पृ० 414।

महाराष्ट्र का लक्ष्य-संगीत ग्रन्थ

स्व० भातखण्डे जी ने प्राचीन ग्रन्थों की दुरुहता के कारण एक ऐसे ग्रन्थ का निर्माण किया जिसमें संगीत शास्त्र सम्बन्धी सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिया गया है जिसका नाम 'श्री मल्लक्ष्य-संगीतम्' रखा। इस ग्रन्थ में स्वराध्याय और रागाध्याय पर ही अधिक विचार किया गया है। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण 1909 ई० में प्रकाशित हुआ था।

स्व० भातखण्डे जी ने 1909 ई० में यह बात गुप्त रखी कि यह ग्रन्थ उनके द्वारा लिखा गया है। उन्होंने केवल इस ग्रन्थ के उद्धरणों को अपनी अन्य पुस्तकों में देकर यह सिद्ध करना चाहा कि 'लक्ष्यसंगीत' नाम का कोई प्राचीन या मध्य युगीन ग्रन्थ है।

"क्रमिक 'पुस्तक-मालिका' में इस ग्रन्थ के उद्धरण यत्र-तत्र हैं और वे इस प्रकार दिये गये हैं, जिससे लगता है कि भातखण्डे जी को 'लक्ष्य-संगीत' नामक ग्रन्थ कहीं से उपलब्ध हुआ है।"¹

'लक्ष्य-संगीत' ग्रन्थ के रचयिता का नाम भातखण्डे जी ने 'चतुर पंडित' बताया था और जिसका निवास स्थान भातखण्ड बताया गया। 1916 ई० से पहले 'लक्ष्य संगीत' ग्रन्थ का परिचय स्व० भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तक 'संगीत शास्त्र' के विभिन्न भागों में दिया है।

भातखण्डे संगीत शास्त्र भाग 1 में निम्न वाक्य उल्लेखनीय हैं—

"लक्ष्य संगीत ग्रन्थ भी हिन्दुस्तानी पद्धति का है, उसमें भी डेढ़ सौ से अधिक राग नहीं हैं। (पृ० 25) "हमें लक्ष्य संगीतकार का मत स्वीकार कर लेना चाहिए, वस यही काफी होगा वह मत हमें भी पसन्द है। (पृ० 74) 'यह रचना 'राग-तरंगिनी' के पश्चात् की और हमारी हिन्दुस्तानी संगीतपद्धति की ही रचना है।" (पृ० 109) "लक्ष्य संगीतकार के समय भी संस्कृत ग्रन्थ प्राप्त थे और वे ग्रन्थ-कर्ता ने देखे भी थे। लक्ष्यसंगीतकार ने इन मध्यकालीन ग्रन्थकारों के लिए जो कुछ कहा है, वह कठोर दिखाई देने पर भी असत्य नहीं है। (पृ० 121) "मैं अपने प्रचलित संगीत के लिए 'लक्ष्यसंगीत' को ही आधार मानता हूँ। (पृ० 218)

"मैंने 'लक्ष्य संगीत' को पसन्द किया है। उससे अधिक उपयोगी ग्रन्थ प्राप्त न होने तक मैं तुम्हें उसी ग्रन्थ की पद्धति के अनुसार चलने का अनुरोध करूंगा। लक्ष्य संगीतकार ने जो भी प्राचीन ग्रन्थों का अनुशीलन किया होगा, परन्तु अर्वाचीन संगीत के प्रति भी उसका प्रेम अतिशय रहा होगा, ऐसा दिखाई देता है। (पृ० 244) "मैंने तुम लोगों से 'लक्ष्यसंगीत' ग्रन्थ की पद्धति को स्वीकार करने का बार-बार आग्रह किया है, इसका अर्थ यह नहीं कि 'चतुर पंडित' कोई

1. मुसलमान और भारतीय संगीत, आ० बृहस्पति, पृ० 53।

अलौकिक बुद्धि का व्यक्ति था ।” (पृ० 265) ।

“आजकल की हमारी संगीत पद्धति को देखते हुए ‘लक्ष्यसंगीत’ जितना उपयोगी ग्रन्थ शायद ही प्राप्त हो सकेगा (पृ० 189) ।

०
भातखण्डे संगीत शास्त्र भाग २ में

“हमारी पद्धति ‘लक्ष्यसंगीत’ ग्रन्थ के अनुसार है और ‘लक्ष्यसंगीत’ संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार है (पृ० 100) ।

भातखण्डे संगीत शास्त्र भाग ३ में

‘चतुर पंडित’ अर्वाचीन संगीत-परिवर्तन का तिरस्कार करने वाला नहीं था ।’ (पृ० 119) ।

स्व० भातखण्डे जी ने इस प्रकार इस ग्रन्थ के लेखक का नाम ‘चतुर पण्डित’ प्रसिद्ध कर दिया और इस ग्रन्थ की उपयोगिता का भी खूब प्रचार किया । इसका प्रभाव संगीत क्षेत्र के गुणी जनों पर बहुत पड़ा । सब लोग इस ग्रन्थ को महान् समझने लगे और इसे पढ़ने की उत्सुकता छोटे से बड़े कलाकारों व राजदरबारों में हो गई । यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में होने की वजह से इसकी महानता और बढ़ गई क्योंकि संस्कृत भाषा सभी को नहीं आती थी विशेषतः मुसलमानों को तथा विदेशियों को । रामपुर दरबार में चूँकि संगीत अपनी उच्च सीमा तक पहुँच गया था अतः वहाँ के नवाबों को भी इस ग्रन्थ को देखने की व पढ़ने की इच्छा हुई । उधर भातखण्डे जी को भी रामपुर के गुणियों से मिलने की इच्छा बहुत थी । रामपुर डेढ़ सौ वर्षों से विद्या और संगीत कलाओं के लिए देश-प्रसिद्ध रहा है । यह प्रसिद्ध मुस्लिम रियासत थी जिसके सभी नवाब स्वयं गुणी होते थे और गुणियों को इज्जत देते थे । रामपुर के नवाब अलीमुहम्मद खां और मुहम्मद शाह रंगीले एक ही युग के थे । अतः सदारंग अदारंग जैसे गुणी रामपुर अक्सर आते थे । उस समय के प्रसिद्ध रबाव बजाने वाले, वीणावादक और ध्रुवपदकार रामपुर दरबार में आते थे । पिछले अध्याय में यह स्पष्ट हो चुका है कि रामपुर के नवाबों ने विद्वानों को सम्मान और आश्रय भी दिया । जैसाकि पहले कहा जा चुका है, दिल्ली साम्राज्य के पतन के बाद देश के कलाकारों को आश्रय रामपुर दरबार में ही मिला । उसी तरह वाजिद अली शाह के पतन के बाद सेनिए लखनऊ से रामपुर आ गए और इसे अपना घर ही बना लिया था । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रसिद्ध सुरसिंगार-वादक बहादुर हुसैन खां, अमीर खां और रहीम खां रामपुर दरबार में आ चुके थे ।

इससे यह बात प्रमाणित होती है कि तानसेन और सदारंग परम्परा के सभी गुणी रामपुर में बस गए थे, अतः संगीत विद्या का सब रहस्य यहाँ के कलाकारों के पास संचित था । यही कारण है कि स्व० भातखण्डे जी महाराष्ट्र प्रान्त के होते

हुए भी रामपुर आना चाहते थे ।

भातखण्डे और रामपुर के गुणियों का सम्पर्क

भातखण्डे जी ने बाल्यकाल की शिक्षा मुहम्मद हुसैन खां के पास ली थी । इनसे बीणावादन आपने सीखा, जो रामपुर के बहादुर हुसैन खां के शिष्य थे । 1890 ई० में भातखण्डे जी ने संगीत ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया था और 1904 ई० से आपने देश-भ्रमण करना शुरू कर दिया था । 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में आपका सम्बन्ध रामपुर के गुणियों से बढ़ने लगा, कारण रामपुर के नवाब हमिद अली खां प्रतिवर्ष बम्बई आते थे और हमेशा विद्वानों की मण्डली उनके साथ में आती थी । इस प्रकार रामपुर का आकर्षण भातखण्डे जी को अपनी ओर खींचने लगा ।

वजीर खां से 'मियां के सारंग' की शिक्षा आपको प्राप्त हुई थी जिसका जिक्र लक्ष्यसंगीत में आपने किया है अतः यह सिद्ध करता है कि 1909 ई० से पहले वजीर खां के सम्पर्क में भातखण्डे जी आ चुके थे । भातखण्डे जी शुद्ध ठाठ बिलावल को ही मानते थे किन्तु 'कल्याण' को प्रथम राग मानते थे । यह रामपुर का ही प्रभाव है ।

"1908 ई० में काले वजीर खां बम्बई में पहुंच गए थे और वहां भातखण्डे जी से मित्रता हो गई । नजीर खां ध्रुवपद, सादरा, खयाल बहुत अच्छा गाते थे । भातखण्डे जी ने इनसे सैकड़ों वंदिशें लीं और लक्ष्यसंगीत में जिनका जिक्र भी है ।

भातखण्डे जी और नवाब हमिद अली

हिज्र हाईनेस नवाब हमिद अली साहब रामपुर, स्वयं गाते-बजाते थे । आपके पिता नवाब कलबे अली साहब को भी संगीत से अत्यंत प्रेम था । रामपुर दरबार में शास्त्रीय संगीत को वर्षों से भी प्रोत्साहन एवं आश्रय मिलता रहा ।¹ मियां तानसेन के वंश रामपुर दरबार के आश्रित थे । नवाब साहब के उस्ताद वजीर खां साहब भी तानसेन के ही वंशज थे । सेनिया परम्परा के ध्रुवपद-धमार स्वयं नवाब बहादुर साहब तथा अन्य दरबारी लोग गाते थे । लखनऊ के ठाकुर नवाब अली साहब । जिनको बाद में 'राजा' की पदवी प्राप्त हुई थी । के द्वारा पंडित जी का नाम तथा कार्य का परिचय नवाब बहादुर रामपुर को मिला । नवाब साहब ने पंडित जी को निमंत्रण देकर रामपुर बुला लिया । संगीत पर पर्याप्त चर्चा पंडित जी की नवाब साहब तथा दरबारी गायक-वादकों के साथ हुई थी । फलतः रामपुर दरबार के साथ पंडित जी का स्नेह सम्बन्ध खूब बढ़ा । नवाब बहादुर साहब ने

1. भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ, पृ० 506 ।

उस्ताद वजीर खां साहब को तानसेन परम्परा के ध्रुवपद-धमार पंडित जी को सिखाने का आदेश भी दिया था। वर्ष में दो-तीन बार पंडित जी रामपुर जाकर 15-20 दिन तक रहते थे। वजीर खां साहब से प्राप्त किये हुए कुछ ध्रुवपद-धमार पंडित जी की क्रमिक पुस्तक भालिका में प्रकाशित हुए हैं। नवाब साहब बहादुर ने पंडित जी को नाड़ा बंधवाकर तानसेन परम्परा में प्रविष्ट कराया था।

भातखण्डे और छम्मन साहब

प्रिन्स सादत अली उर्फ छम्मन साहब रामपुर के प्रिन्स हैदर अली के सुपुत्र थे। हैदर अली साहब ने स्वयं सेनिया घराने के सुप्रसिद्ध बहादुर हुसैन खां साहब से सुरसिंगारवादन सीखा था। अपने सुपुत्र छम्मन साहब को आपने सुरसिंगार की शिक्षा प्रदान की थी। छम्मन साहब को तानसेन परम्परा के सैकड़ों ध्रुवपद-धमार कंठस्थ थे, आपने तानसेन के पुत्र के वंशज मुहम्मद अली खां साहब गिधीरवालों से सीखा था। भातखण्डे जी का परिचय आपसे रामपुर में ही हुआ था। आप उन्हें बहुत मानते थे। जब पंडित जी रामपुर जाते, छम्मन साहब के घर पर घंटों बैठकर संगीत की चर्चा आपस में होती। ध्रुवपद-धमार सुने-सुनाये जाते। "सचमुच छम्मन साहब एक अति प्रेमी एवं निष्कलुष अंतःकरण के व्यक्ति थे"—ऐसी प्रशस्ति पंडित जी सदैव उनके सम्बन्ध में करते। दोनों ने मिलकर संगीत के प्रसार को, उसके स्तरीकरण की बड़ी योजनाएं बनाई थीं। छम्मन साहब ने भी गीत रचना की है। इनके द्वारा बनाये हुए तथा संकलित उनके गीत क्रमिक पुस्तकों में प्रकाशित हुए हैं। पेशेवर गायक-वादकों में आस्था निर्माण कराने में छम्मन साहब ने पंडित जी को बहुत सहायता दी थी। अल्पायु में ही सन् 1922 में आपका स्वर्गवास हुआ।¹

भातखण्डे तथा उस्ताद वजीर अली खां

उस्ताद वजीर खां रामपुर राज्य के गुणीजनखाने के वरिष्ठ अधिकारी थे। नवाब हामिद अली खां के ये उस्ताद थे और श्वसुर भी। ये सदारंग के वंशज थे तथा तानसेन परम्परा के साथ पुत्री के वंश से इनका सम्बन्ध था। वीनकार के रूप में इनको परमोच्च सम्मान प्राप्त था। नवाब हामिद अली खां बहादुर के गंडा-बन्ध शागिर्द हो जाने के कारण पंडित भातखण्डे को वजीर खां साहब की तालीम प्राप्त हुई, जिसका क्रमिक पुस्तक मालिका के प्रकाशन में तथा राग रूपों के निर्धारण में उन्होंने उपयोग किया।²

1. भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ, पृ० 506।

. वही, पृ० 500।

भातखण्डे तथा उस्ताद मुहम्मद अली खां, गिधौरवाले

संगीत-सम्राट तानसेन के पुत्र वंश में उस्ताद मुहम्मद अली खां अन्तिम व्यक्ति थे। रामपुर दरबार के गायक-वादकों में इनका बड़ा सम्मान था। रवाब बजाने में अत्यन्त कुशल होते हुए, वे अच्छे गायक भी थे। सैकड़ों ध्रुवपद-घमार, सादरे इनको कण्ठस्थ थे। इनके ये गीत ही वास्तव में रागों की परम्परागत शक्लें थीं। पंडित भातखण्डे जी इस तथ्य की जांच-पड़ताल कर लेने के बाद अपने कार्य में इनकी सहायता प्राप्त करने की ओर जुट गये। ठाकुर नवाब अली, नवाब हामिद अली तथा छम्मन साहब की मध्यस्थता से यह काम सम्भव हो सका। पण्डित भातखण्डे इन्हें अपना उस्ताद मानते थे और इनके जैसे उच्च परम्परा के गायक-वादकों की मौजूदगी में ही रागों को स्तरीकरण निपटा लेने की उन्हें जिद हो गई थी। अपनी योजना-चातुर्य का सम्पूर्ण उपयोग करते हुए यह काम उस्ताद के रहते हुए ही उन्होंने पूर्ण कर लिया। तानसेन कुल की यह अन्तिम ज्योति सितम्बर 1927 में यद्यपि प्रत्यक्ष में बुझ गई, तथापि 'मारिफुन्नगमात' एवं 'क्रमिक पुस्तक मालिका' द्वारा असंख्य चिनगारियों के रूप में आज भी विद्यमान हैं।¹

इस प्रकार रामपुर दरबार में भातखण्डे जी का प्रवेश हो गया और उन्हें रामपुर-परम्परा के बड़े-बड़े गुणियों और कलाकारों के पास जाने का अवसर मिल गया। रामपुर नवाब के गुरु वजीर खां के पास उन्हें जाने का रास्ता सुलभ हो गया। छम्मन साहब ने बड़ी उदारतापूर्वक अपनी चीजें व रागों के रूप भातखण्डे जी को सिखाईं। परिणाम यह हुआ कि रामपुर घराने की सम्पूर्ण गायकी का रहस्य भातखण्डे जी ने समझ लिया। इन्हीं प्राप्त की हुई चीजों का संकलन करके आपने क्रमिक पुस्तक मालिकाओं में इन्हें देकर संगीत जगत् का कल्याण किया है। अतः रामपुर के विषय में भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तक संगीत शास्त्र भाग 4 में लिखा है कि²—

(1) 'रामपुर में तानसेन-परम्परा की बड़ी मान्यता है...मेरे गुरु (नवाब साहब रामपुर) खयाल तो प्रायः सुनते भी नहीं। (पृ० 656)।

(2) रामपुर के नवाब साहब ने और भी एक विशेष बात मुझे कही थी। उन्होंने बताया कि "रे म प' में स्वर दो बार कहकर फिर गंधार से षड्ज तक जाने में देसी राग अत्यन्त स्पष्ट तथा पृथक् होगा। (पृ० 497)

(3) सआदत अली खां (छम्मन साहब)....की और मेरी घनिष्ठ मित्रता थी। मैं रामपुर बहुधा उनके कारण और उनके लिए ही जाता रहता था। उनके पास से मैंने कई बातें सीखीं। उत्तर के रागों के भेद मैंने उनकी संगति से अच्छी

1. भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ, पृ० 499-500।

2. संगीत चिन्तामणि, आचार्य बृहस्पति, पृ० 412।

प्रकार समझे। (पृ० 387)

भातखण्डे जी ने अपनी कुशलता से रामपुर के गुणियों को अपने वश में कर लिया था और 'लक्ष्य-संगीत' ग्रन्थ की ओर सभी गुणियों का ध्यान आकर्षित हुआ। रामपुर-दरवार के नवाबों और रईसों को संगीत का उद्धार करने के लिए प्रेरित किया। इसी कारण रामपुर के सभी गुणी भातखण्डे जी को मानने लगे और ठाकुर नवाब अली खां को अपना शिष्य बनाया। भातखण्डे जी अपने प्रयास में अति सफल हुए। इन्होंने अपने लक्ष्य की प्राप्ति हुई, स्वयं को रामपुर का ऋणी समझते हैं। अतः हमें यह कहने में संकोच नहीं है कि वर्तमान भातखण्डे साहित्य रामपुर-परम्परा का प्रतिविम्ब है।

लक्ष्य संगीत ग्रन्थ पर रामपुर परम्परा की छाप

यह बात तो अब स्पष्ट हो चुकी है कि इस ग्रन्थ के रचयिता स्वयं भातखण्डे जी थे। इस बात का स्पष्टीकरण उन्होंने अपने अंतिम दिनों में किया है। 'कालान्तर में भातखण्डे जी ने कहा कि मेरे परिश्रम के फलस्वरूप एक संस्कृत ग्रन्थ (लक्ष्य-संगीत) की रचना हुई है।'¹

'ठाठ-भेद' नामक सिद्धान्त एक रहस्य रहा है, केवल 'सेनियों' के वंश में सन्तति-परम्परा से चला आया था। 'स्वर-भेद' नामक सिद्धान्त के जानने वाले गायक साज बजाने वालों को इसके आधार पर धोखा देते हैं। रामपुर परम्परा इस रहस्य से परिचित थी और जानी साहब ने इसका स्पष्टीकरण किया है। इस परम्परा में कल्याण, विलावल, खमाज, काफी, आसावरी, भैरवी, मारवा, पूरवी, भैरव और तोड़ी माने गये हैं और 'ठाठ-भेद' एवं 'स्वर-भेद' के सिद्धान्त को इन्हीं दस ठाठों के आधार पर स्पष्ट किया है। यही दस ठाठ भातखण्डे के राग वर्गीकरण का आधार है। इसका अर्थ भी यही है कि लक्ष्यसंगीत की रचना से पूर्व भातखण्डे जी रामपुर-परम्परा से पूर्णतया प्रभावित हो चुके थे।

भातखण्डे जी ने स्वयं एक गायक का कथन लिखा है कि गले की तैयारी कराने के लिए हम शिष्य का गला पहले दस ठाठों में फिरवा देते हैं। इस गायक का नाम नहीं लिखा है, परन्तु इस प्रकार वे स्वीकृत करते हैं कि उत्तर भारत के गुणी पहले से ही दस ठाठों का अभ्यास करते-कराते आये थे।

इन तथ्यों से यह भलीभांति सिद्ध है कि भातखण्डे जी भले ही संसार भर में घूमे हों, परन्तु लक्ष्य संगीत के राम-लक्षण और ठाठ-वर्गीकरण का आधार उन्हें रामपुर-परम्परा से ही मिला था।

सन् 1908 में नजीर खां (काले नजीर) मुरादाबाद वाले भातखण्डे जी द्वारा रचित लक्षण-गीतों की ख्याति सुनकर बम्बई पहुंच चुके थे। नजीर खां

1. मुसलमान और भारतीय संगीत, आचार्य बृहस्पति, पृ० 53।

रामपुर दरवार के गुणियों से सम्पृक्त थे, ध्रुवपद, सादरा, खयाल सभी कुछ अच्छा गाते थे। भातखण्डे जी ने अपने शोध प्रधान स्वभाव के कारण नजीर खां से प्रश्न-परिप्रश्न न किए हों, यह सम्भव नहीं। 1908 ई० में ही भातखण्डे जी ने लक्ष्य संगीत का लेखन आरम्भ किया था। इसलिए लक्ष्य संगीत के दसों ठाठ और उनमें किया हुआ राग-वर्गीकरण काले नजीर खां के प्रभाव से शून्य नहीं कहा जा सकता।

ठाठ-भेद को समझने वाले सभी रामपुरी गुणी पूर्वांग-प्रधान और उत्तरांग प्रधान रागों तथा उनमें तथाकथित वादी स्वरों के आधार पर रागों के समय का निर्णय करते थे। हैदर अली खां और छम्मन साहब तो इससे परिचित थे ही, ठाकुर नवाब अली खां भी परिचित थे।

व्यावहारिक संगीत में ठाकुर साहब भातखण्डेजी को बहुत कुछ सिखा सकते थे, अतः भातखण्डे जी की जिन उक्तियों के लिए ग्रन्थ प्रमाण नहीं है, वे ठाकुर नवाब अली खां जैसे मर्मज्ञों का प्रसाद-मात्र है।

नवाब अली खां के प्रयत्न से भातखण्डे जी और छम्मन साहब में सम्पर्क हुआ और वह घनिष्ठतम हो गया। भातखण्डे जी ने छम्मन साहब को अपना मित्र और गुरु कहा है और स्वीकृत किया है कि उत्तर भारत के रागों के भेद छम्मन साहब की ही कृपा से उनकी समझ में आये। बाद में भातखण्डे जी नवाब हामिद अली खां, मुहम्मद अली खां और वजीर खां के शिष्य विधिवत हुए।

भातखण्डे जी का कथन है—“रामपुर के साहबजादा छम्मन साहब, तानसेन घराने के मुहम्मद अली खां की परम्परा को तथा प्यार खां, जाफ़र खां की परम्परा के बहादुर हुसैन खां की परम्परा को मानते थे। वे तानसेन परम्परा के अनुयायी थे, इसी कारण मैं उनका मत मान्य करता हूँ। ऐसी स्थिति में मुहम्मद अली खां और छम्मन साहब को भी गुरु स्थान पर मानता हूँ। अप्रसिद्ध राग अन्य गायकों ने कैसे भी गाये, यदि वे मेरी गुरु-परम्परा से नहीं मिलते, तो उनका मत मुझे ग्राह्य नहीं होता।”

ये शब्द सिद्ध करते हैं कि भातखण्डे जी ने भारतवर्ष भर का भ्रमण किया, परन्तु उन्हें संतुष्ट रामपुर-परम्परा ने ही किया। किंतु लक्ष्यसंगीत में रामपुर और उसकी परम्परा की चर्चा कहीं भी नहीं की गई है। हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र के प्रथम तीन भागों में लक्ष्य संगीत के उद्धरण देते हुए कहा था—

“मैंने लक्ष्य संगीत को पसन्द किया है, उससे अधिक उपयोगी ग्रंथ प्राप्त न होने तक मैं तुमसे भी उसी ग्रन्थ की पद्धति के अनुसार चलने का अनुरोध

करूंगा।¹ 'चतुर पंडित' नाम की आड़ में भातखण्डे जी ने एक तीर से कई शिकार किये। लोगों की समझ में यह आया कि भारत, शाङ्गदेव इत्यादि मनीषी चतुर पंडित की दृष्टि में अतत्त्वज्ञ थे और भारतखण्डे जी का पूज्य ग्रन्थकार चतुर पंडित स्वरों की शुद्ध अवस्था उनकी आदिम श्रुति पर मानता था। भातखण्डे जी केवल चतुर पंडित का अनुवर्तन कर रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि जब लक्ष्यसंगीत, भातखण्डे संगीत शास्त्र (तीनों भागों में), अभिनवराग मंजरी और क्रमिक पुस्तक मालिका के 6 भाग रामपुर के ऋण की चर्चा से शून्य हैं, तब भातखण्डे संगीत-शास्त्र के अंतिम भाग में अपने जीवन के अन्त में भातखण्डे जी ने रामपुर के गुणियों की चर्चा करके उनके ऋण की स्वीकृति क्यों की? इस प्रश्न का सीधा उत्तर यह है कि अपने द्वारा वर्णित रागरूप को प्रामाणिकता देने के लिए उन्हें यह स्वीकृति देनी पड़ी और कोई भी उपाय अपने मत की प्रामाणिकता के लिए उनके पास न था।

लक्ष्यसंगीत में रागों का चलन नहीं है। ठाकुर नवाब अली खां 1910 ई० में भी अच्छे कलाकार थे, गायन उत्तेजित मंडली, बम्बई में उन्होंने हारमोनियम वादन किया था। इससे यह सिद्ध है कि हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के प्रथम तीन भागों में जो राग-विवेचन और पश्चिम एवं उर्दू ग्रन्थों की सामग्री है, वह ठाकुर नवाब अली खां का ही प्रसाद है।

यह स्पष्ट है कि मुसलमानों में सुशिक्षित, कई भाषाओं से परिचित, चिन्तक, विषय विवेचन की क्षमता रखने वाले तीन व्यक्ति नवाब हामिद अली खां, साहबजादा छम्मन साहब और ठाकुर नवाब अली खां की त्रिमूर्ति भातखण्डे जी की भगवत्कृपा से प्राप्त हुई थी। ये तीनों ही रईस, गुणी, गुण-ग्राहक, उदार, संगीत-मर्मज्ञ और संगीत के प्रचार के इच्छुक थे।

ठाकुर नवाब अली खां के राग-व्यवहार को प्रत्यक्ष रूप में सुनकर खातखण्डे जी का चकित हो जाना, और विधिवत् गंडा बंधवाकर रामपुर-दरबार से सम्बद्ध होना स्वाभाविक और अनिवार्य था।

1. भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग 1, पृ० 244।

रामपुर परम्परा के प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति

आचार्य जी का जीवन-वृत्त

जैसा कि पिछले विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है, रामपुर दरवार ने अनेक महान् कलाकारों, संगीतज्ञों और संगीत शास्त्रियों को जन्म दिया है। इस दरवार से संबंध रखने वाले इन विद्वानों में आचार्य बृहस्पति अंतिम संगीत-शास्त्री थे। वर्तमान युग के किसी भी संगीत प्रेमी के लिए आचार्य बृहस्पति का नाम अज्ञात नहीं है। इस महान् व्यक्ति ने अपना संपूर्ण जीवन ही भारतीय संगीत को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए उत्सर्ग कर दिया। बचपन से ही इस त्यागमूर्ति ने अपना जीवन संगीत की सेवा और अध्ययन में लगा दिया।

आचार्य बृहस्पति का जन्म रामपुर में 20 जनवरी, सन् 1918 में हुआ। आपकी चार पीढ़ियां रामपुर में ही रह चुकी हैं। बृहस्पति जी के परदादा पं० दत्तराम जी रामपुर रियासत के राजपंडित थे। वे प्रकाण्ड विद्वान्, ज्योतिषशास्त्र व गणित के ज्ञाता, सिद्ध तांत्रिक, कवि और संगीतज्ञ भी थे। वे रामपुर नरेश नवाब कल्वे अली खां के राजदरवार में राजसभा के रत्न थे। एक बार आपकी अद्भुत भविष्यवाणी सत्य हो गई, जिससे नवाब साहब ने प्रसन्न होकर उनके लिए एक विश्वमन्दिर का निर्माण करवा दिया। यह शिवालय आज भी रामपुर में है और इस वंश की विद्या एवं कीर्ति का अमर प्रतीक है। मुसलमानों ने इस मन्दिर निर्माण का विरोध किया था किंतु नवाब ने पं० दत्तराम जी को दिया वचन पूरा किया। आचार्य बृहस्पति स्वयं शिवभक्त थे, साथ ही बगला देवी के भी उपासक थे। योग-तंत्र की शिक्षा आपको रामपुर के पं० शिवनारायण दीक्षित से प्राप्त हुई थी। इस प्रकार के प्रतिष्ठित राजपंडित कुल से आचार्य महोदय का संबंध था। इसी कारण रामपुर के सभी नवाबों ने आचार्य जी को वही राजसम्मान प्रदान किया जो इनके पूर्वजों को मिलता रहा। आप के पिता पं० गोविन्दराम जी भी एक विद्वान् संस्कृत पंडित तथा शिक्षक थे जिनके संरक्षण में बालक कैलाश चन्द्र ने संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की।

पुरातन और आधुनिक प्रशिक्षण-पद्धति के समन्वित रूप ने आचार्य जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उन्होंने बाल्यकाल से ही सद्गुरुओं के

चरणों में बैठकर विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया तथा काव्य-कला एवं संगीत कला की साधना की ।

आचार्य जी का जीवन वचन से ही बहुत संघर्षमय रहा । पिता की मृत्यु इनकी दस वर्ष की आयु में ही हो गई थी । अतः माता ने ही बड़े साहस व धैर्य से इनका लालन-पालन किया । माता ने पुत्र के हृदय में ऐसे संस्कार डाल दिये जो कि भविष्य में इतने दृढ़ हो गए कि बालक कैलाश धीरे-धीरे एक चामत्कारिक व्यक्ति बनता गया । वह सदा से अपनी वंश परम्परा की सुरक्षा के प्रति जागरूक रहा । इस बालक का उच्चारण साढ़े तीन वर्ष की आयु में पूर्णरूप से शुद्ध था । पांच वर्ष की आयु में संस्कृत के अनेक श्लोक भी इन्हें कण्ठस्थ हो गए थे । इस बालक ने दस वर्ष की आयु में ही एक संस्कृत श्लोक की रचना करके लोगों को चमत्कृत कर दिया । चौदह वर्ष की आयु में सुन्दर काव्य रचना कर डाली । 1936 ई० में इसने शास्त्री की उपाधि लाहौर से प्राप्त की ।

एक बार अयोध्या की एक पंडित-सभा में संस्कृत में स्वयं श्लोक रचना की जिसकी पूर्ण पंडित-सभा ने बहुत सराहना की और इस बालक को काव्यमनीषी एवं साहित्य सूरि की उपाधियां प्रदान कीं ।

शिक्षा—आचार्य की प्रारंभिक शिक्षा पिता जीके चरणों में हुई । माता भी बहुत धार्मिक तथा ज्ञानवती थीं । आपकी विदुषी माता का नाम नर्मदा देवी था जिन्होंने अपने होनहार बालक को हर प्रकार की शिक्षा दी । वे स्वयं बहुत दृढ़ विचारों वाली तथा स्वाभिमानी महिला थीं । उन्होंने एक सुयोग्य पुत्र को उत्पन्न करके और उसे समुचित संस्कार और शिक्षा देकर अपने कुल की मर्यादा और प्रतिष्ठा को आगे बढ़ाया ।

“अलंकार शास्त्र की शिक्षा आचार्य जी ने महामहोपाध्याय पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री से, न्याय की शिक्षा स्व० पंडित हरिशंकर से, व्याकरण की शिक्षा पं० छेदी झा से तथा प्रारंभिक शिक्षा पं० कन्हैयालाल शुक्ल से, राजपंडित रामचन्द्र शास्त्री तथा अपने पितृ चरणों से प्राप्त की । कंठ संगीत में आप रामपुर दरबार के स्व० मिर्जा नवाब हुसैन तथा ताल व्यवहार में इसी दरबार के मार्दङ्गिक स्व० पं० अयोध्याप्रसाद के शिष्य थे । मृदंग तबले के साथ-साथ प्रौढ़ स्वरज्ञान श्री बृहस्पति जी पर दुर्लभ गुरुकृपा का परिणाम है ।”¹

विवाह—शिक्षा प्राप्त करने के बाद इनका विवाह यथासमय साधनादेवी से 1942 में हुआ था ।

लाहौर में विद्या अध्ययन करके लौटने पर रामपुर में ही उन्हें एक अध्यापक का पद प्राप्त हो गया जिस पर वे कुछ समय तक कार्य करते रहे । पर उनकी

प्रतिभा और कार्यक्षेत्र इस छोटी-सी सीमा में रहने वाला नहीं था। अतः वे कुछ समय बाद उसे छोड़कर बाहर निकल पड़े और धर्म तथा भारतीय संस्कृति का प्रचार करते हुए रेडियो के लिए विविध प्रकार की साहित्यिक रचनाएं करने लगे। इसी अवधि में ही रेडियो के लिए अत्यंत उत्कृष्ट नाटकों और काव्य की रचना की। इन रेडियो नाटकों के द्वारा वे भारत के गौरवपूर्ण अतीत की महिमा प्रकट करने में अत्यन्त सफल हुए। आवश्यकता पड़ने पर वे इन नाटकों में स्वयं अभिनय भी करते और प्रयोग के सूत्र-निर्देश भी करते। अनेक बार उन्होंने बड़ी दक्षता से कण्ठ स्वर को बदलकर एक से अधिक पात्रों का एक साथ सफल अभिनय भी किया। इनके कतिपय तत्कालीन रेडियो रूपकों के अनुवाद भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी हुए।

सन् 1949 में दिसम्बर मास में वे कानपुर के विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज में धर्माचार्य के पद पर नियुक्त हुए। वस्तुतः आचार्य जी के जीवन का स्वर्णकाल यहीं से आरंभ होता है। इस कॉलेज में रहते हुए विश्वविद्यालय पद्धति से भी अध्ययन किया और बी० ए०, एम० ए० तथा पी-एच० डी० की उपाधियां सम्मानपूर्वक प्राप्त कीं। अब वे कॉलेज में धर्मोपदेश के अतिरिक्त बी० ए० और एम० ए० में हिन्दी साहित्य का अध्यापन भी करने लगे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे एक अत्यन्त लोकप्रिय और सफल अध्यापक सिद्ध हुए। काठिन, गूढ़ और जटिल विषयों को अत्यन्त सरल और सुबोध रीति से समझा देना उन्हें अनायास ही आता था।

अनुसन्धान का आरंभ

पहले बताया जा चुका है कि बचपन से ही उन्हें संगीत के संस्कार और शिक्षा प्राप्त हुई थी। निरन्तर मनन और अभ्यास से वे उसे सदा बढ़ाते रहे। कॉलेज में वे अपने कुछ संगीत प्रेमी साथियों के साथ घंटों तक संगीत-चर्चा, रागों का स्वरूप-निरूपण और उनका प्रस्तुतीकरण करते रहते थे। वे प्रायः अपने साथियों से कहा करते थे कि अब मैं जीवन-यात्रा में निश्चित होकर प्रतिष्ठित हो गया हूं और अब यही समय है कि मैं अपने गुरुजनों के आदेश का पालन करूं। यह आदेश क्या था इसका परिचय स्वयं उन्होंने अपने शब्दों में किया है जो इस प्रकार है—

“रामपुर दरबार के गायक स्वर्गीय मिर्जा नवाब हुसैन सैयद थे। संगीतजीवी जाति में उत्पन्न होने पर भी उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने अपने प्रिय शिष्य (बृहस्पति) को यह कहा कि, “संगीत का अभ्यास करो, शास्त्रों को समझो, उन पर श्रद्धा करो और उन ऋषि-मुनियों के अभिप्राय को समझो जो निःस्पृह, निःस्वार्थ और सत्यभाषी रहे हैं। हम शास्त्र नहीं जानते, परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऋषियों के ग्रन्थों को समझने के लिए

जितनी तपस्या की आवश्यकता है, वह बहुत दिनों से नहीं की गई है। इसी रामपुर-दरवार में 'पंडित' कहलाने वाले ऐसे लोग भी कभी-कभी आये हैं, जिन्होंने भरत और शाङ्गदेव जैसी महाविभूतियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं समझी, उनके ग्रन्थों को अस्पष्ट कहा है, उनको उपहासपूर्ण दृष्टि से देखा है, इतना ही नहीं उनके प्रति उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिन्हें सुनकर हमें कष्ट होता रहा है। तुम्हारे पूर्वज विद्वान एवं संगीत मर्मज्ञ रहे हैं, तुम उनके वंशधर हो, यदि तुम प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिए तपस्या नहीं करोगे, तो और कौन लोग करेंगे। विश्वास रखो, परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। हम न होंगे परन्तु तुम्हारी सफलता पर हमारी आत्मा को शांति मिलेगी और वही हमारी गुरु-दक्षिणा होगी। यदि नहीं करोगे, तो हमारे ऋणी रहोगे, और हमारी आत्मा अशान्त रहेगी।”¹

आचार्य जी को अनुसंधान की प्रेरणा देने वाले दूसरे व्यक्ति रामपुर राज्य के अमुपम ग्रंथागार के विद्वान एवं यशस्वी प्रबंधक मौलाना इस्मियाज अली खां अर्शी हैं जो बृहस्पति को अपना अन्तरंग मित्र व सखा समझते थे।

संगीत के क्षेत्र में एक बड़ी विडम्बनापूर्ण स्थिति रही है और वह यह कि संगीत के गायक और प्रत्यक्ष अभ्यासी उसकी शास्त्रीय आधार-भूमि के ज्ञान से विमुख रहे हैं। संगीत के क्षेत्र में भारतवर्ष के प्राचीन महर्षियों और मनीषियों ने जो कुछ भी कार्य किया है वह संस्कृत भाषा में निबद्ध है। न तो किसी गायक ने संस्कृत सीखने का प्रयत्न किया और न कभी शास्त्रीय विवेचना पद्धति को जाना-समझा ही। संस्कृत के विद्वान भी गायन-वादन को दृश्य और अप्रतिष्ठकारक समझने के भ्रमजाल में पड़े रहकर संगीत के प्रति आकृष्ट होने से अपने को बचाये रहे। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि संगीत के भारतीय शास्त्र प्रबंध अज्ञान के गहर में धूमिल होने लगे। पुराने सिद्धांत कुछ परम्परागत घिसी-पिटी रूढ़ियों के रूप में तथाकथित घरानों में ही रह गए।

वर्तमान युग में इस समस्या ने एक और ही नया रूप धारण कर लिया था जो वास्तव में बड़ी चिन्ता की बात थी। भारत वर्ष में अंग्रेजों के आगमन के बाद जिस तथाकथित पुनर्जागरण का आरम्भ हुआ, उसके फलस्वरूप अध्ययन की नयी पाश्चात्य दिशाएं सामने आयीं। आलोचना और अनुसंधान की नयी पद्धति का विकास हुआ। इस पद्धति में बड़ी सुविधा की गुंजाइश लोगों को खूब मिली है जिसके अन्दर मूल ग्रंथों को गुरुमुख से झली प्रकार अध्ययन किये बिना केवल पल्लवग्राही जानकारी के आधार पर समालोचना की जा सकती है। संगीत के क्षेत्र में भी इस प्रकार के आलोचक और तथाकथित शास्त्रोद्धारक प्रकट हुए। उन्होंने

संस्कृत शास्त्रों को समझने में असमर्थ होकर शास्त्रों को ही गलत बताना आरम्भ कर दिया था। ये लोग शास्त्रों की निन्दा करते हुए मनमाने सिद्धांतों का ढोल पीटने लगे। इस प्रकार अपने को संगीत का सर्वज्ञ पंडित मानने वाले आधुनिक विद्वान पुरातन आचार्यों की विद्या और बुद्धि के तपःपूत वैभव के प्रति आस्थाहीन होकर उनकी निन्दा ही करते रहे। इस प्रकार की विप्लवमयी स्थितियों में आचार्य बृहस्पति का उदय एक महत्वपूर्ण घटना है।

लगता है अब आचार्य जी के लिए गुरुओं के ऋण से उतरने का समय आ गया था। उन्हें कॉलेज पुस्तकालय के संस्कृत विभाग में शाङ्गदेव रचित 'संगीत रत्नाकर' की एक प्रति मिली जिसे तब तक पुस्तकालय से किसी ने नहीं लिया था। आचार्य जी प्रसन्नता और उत्साह से उसके अध्ययन में जुट गए। उनके अनुसंधान का आरम्भ यहीं से होता है। इस पुस्तक में मूल पाठ पर्याप्त त्रुटिपूर्ण था और व्याख्या भी खण्डित तथा अधूरी थी। इसका एक विशेष कारण भी था। शास्त्र-विवेचन की प्राचीन प्रणाली सूत्ररूप में शास्त्रविवेचन करती थी और बीच की तमाम ऐसी बातें जो गुरुमुख से प्रत्यक्ष कर्माभ्यास के रूप में होती थीं, उसे छूती रहती थी। गुरुजनों के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन की पद्धति की स्थिति का कालांतर में लोप हो जाने के कारण वे बातें भी लुप्तप्राय हो गईं। चूंकि आचार्य जी को दोनों दिशाओं का उत्कृष्ट कोटि का ज्ञान था अतः वे हिम्मत हारे बिना शास्त्र का उद्धार करने में लगे रहे और धीरे-धीरे शास्त्रकर्ता मनीषियों और गुरुजनों के आशीर्वाद से उन्हें सफलता भी मिलने लगी। फिर भरतमुनि का नाट्यशास्त्र और उस पर अभिनवगुप्तपादाचार्य की टीका, मतंग और शाङ्गदेव के ग्रन्थों का अध्ययन किया। अपना सर्वस्व होमकर आचार्य जी ने अपना यह सारस्वत यज्ञ पूरा किया। सिद्धांतों के प्रायोगिक रूप को स्पष्ट करने के लिए "बृहस्पति-वीणा, श्रुति-दर्पण और बृहस्पति किन्नरी का विशेष निर्माण कराया गया। आचार्यों की उपलब्धियों को यथासम्भव कॉलेज में स्थित पदार्थ-विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रमाणित किया गया। भगवत्कृपा से तपस्या फलवती हुई। आचार्यों ने जैसे अपने रहस्य प्रसन्न होकर स्वयं प्रकट कर दिये। आचार्य जी ने 'भरत का संगीत सिद्धांत' ग्रंथ प्रस्तुत किया और उत्तर-प्रदेश राज्य की हिन्दी समिति ने उसे प्रकाशित किया। अध्ययन और अनुसंधान का क्रम चलता रहा। चन्द्रमा का गोपन कैसे हो सकता है ? यज्ञ का विस्तार होने लगा। संगीत के मर्म को प्रकाशित करने वाले शोध-लेख पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे। आकाशवाणी के परिसंवादों में आचार्य जी के भाषण होते रहे। आचार्य जी ने पाश्चात्य शोध-प्रणाली का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। उर्दू और फारसी के अपने ज्ञान के आधार पर संगीत की दृष्टि से भारतीय इतिहास की पूरी छानबीन आचार्य जी ने कर डाली। ध्रुवपद और उसके विकास पर आचार्य जी ने पी-एच० डी० का शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया।

इनके चलते-चलाते पारिवारिक जीवन में एक घटना घटी जो उल्लेखनीय इसलिए है कि इसने एक नयी दिशा का द्वार खोल दिया। सन् 1960 के बाद ही इनकी धर्मपत्नी साधना जी का स्वर्गवास हो गया। आचार्य जी की उपलब्धियों में इनका भारी योगदान था। थोड़े समय बाद ही शोक विह्वल आचार्य जी मृतात्माओं से सम्पर्क की साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। वे स्वयं किसी महान आत्मा के अंश थे। अतः इस साधना में सहज ही उच्चातिउच्च सफलता मिली। अतीत की अनेक दिवंगत आत्माओं ने उनपर कृपा की। नारद, तुम्बरु, भरतमुनि, अभिनवगुप्त आदि महान् पुरुषों के दिव्य दर्शन इन्हें हुए; सन्देश भी मिलते रहे। अनेक सिद्ध कवियों की कविताओं के रूप भी इन्हें इस समाधि की अवस्था में मिलते रहे जो एकत्र संग्रहीत हैं। इन महात्माओं ने संगीत के शास्त्र-ग्रंथों का उद्धार करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। आशातीत सफलता मिली। ग्रंथों की ग्रंथियां, पाठों की त्रुटियां इन महात्माओं के प्रसाद और अन्तर्प्रेरणा से स्पष्ट हो गईं।

इसी बीच आचार्य जी को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ़ म्यूजिक एंड फार्मिडेटर्स का प्राचार्य का पद प्रस्तावित किया गया। पर आकाशवाणी ने 12 वर्ष का अभूतपूर्व अनुबन्ध देकर इन्हें अपने यहां बुलाने में पहल कर ली। आकाशवाणी में आचार्य जी संगीत, संस्कृत और ब्रजभाषा के सर्वोच्च परामर्शदाता के रूप में सन् 1965 से कार्य करते रहे। यहां आकर इन्हें अध्ययन की सुविधा और साधन अधिक मिले।

अब वे अध्ययन और उपलब्धियों की ऐसे भूमिका पर पहुंच गए थे कि जहां उन्हें कदम-कदम पर किसी ऐसे सुयोग्य पात्र की आवश्यकता प्रतीत होने लगी जो इनकी उपलब्धियों को प्रयोग के द्वारा प्रत्यक्ष कर सकता। संयोग से उसी समय प्रयाग के स्व० पं० भोलानाथ भट्ट की शिष्या कु० सुलोचना कालेकर योग्य गुरु की तलाश करती हुई उनके पास पहुंची। आचार्य जी ने सुलोचना की प्रतिभा को अनायास ही परख लिया और उसे पूर्णतया उपयुक्त पात्र समझकर शिक्षा देने लगे। दो व्यक्तियों के स्थूल और बाहरी भेद-भाव को समाप्त करके पारस्परिक एकता और अखंडित निष्ठा की दृष्टि से उन्होंने कु० सुलोचना कालेकर के साथ वैदिक रीति से विवाह कर लिया। इस प्रकार सिद्धांत और प्रयोग क्रिया का सुखद समागम हुआ और उससे एक पूर्ण घटक की सृष्टि हुई। सुलोचना कालेकर और अब श्रीमती सुलोचना बृहस्पति ने सफलतापूर्वक आचार्य जी की समस्त शिक्षाओं को प्रत्यक्ष कर दिया और उनकी देखरेख में निरंतर अभ्यास करती रहीं। आज श्रीमती सुलोचना के रूप में आचार्य जी की समस्त उपलब्धियां साकार हैं। सुलोचना जी के गायन में स्वर, लय, भाव, साहित्य आदि का अनुपम सौन्दर्य रहता है और उस पर आचार्य जी के व्यक्तित्व और कृतित्व की दिव्य छाप।

‘मुसलमान और भारतीय संगीत,’ ‘खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार’

(लेखिका, श्रीमती सुलोचना बृहस्पति) और 'संगीत चिन्तामणि' (संगीत संबंधी लेखों का संग्रह) आचार्य जी की प्रमुख शोध-कृतियां हैं। संगीत का एक प्राचीन ग्रंथ 'संगीत समयसार' का सम्पादन और टीका भी आचार्य जी ने दिया। प्राचीन शास्त्रों के सम्बन्ध में छापे हुए भ्रम जाल को दूर करने की दृष्टि से आचार्य जी ने भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' के अट्ठाईसवें अध्याय पर संस्कृत में 'संजीवन भाष्य' और हिन्दी में 'साधना-टीका' की रचना की, जो इस समय प्रकाशन में है। नाट्यशास्त्र के अट्ठाईसवें से चौंतीसवें अध्याय तक के भाग में भारतीय संगीत का स्वरूप निरूपण किया गया है। अट्ठाईसवां 'स्वराध्याय' है, इसमें संगीत का मूलभूत, सावर्देशिक और सार्वकालिक सामग्री का विवेचन किया गया है। आचार्य जी की योजना इस पूरे अंश पर और अभिनवगुप्तपादाचार्य की 'अभिनव-भारती' पर भाष्य लिखने की थी। पर ईश्वर की इच्छा से वे इसे इस जन्म में पूरा नहीं कर सके। वे कहा करते थे कि इस अधूरे काम को पूरा करने के लिए मुझे फिर जन्म लेना होगा।

आचार्य जी अद्भुत प्रतिभा और मेधा के जीव थे। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि अनेक भाषाओं के असम ज्ञाता थे। वे समान गति से इन सभी भाषाओं में उत्कृष्ट कोटि की काव्य-रचना किया करते थे। 'अनंगरंग' उपनाम से उन्होंने संगीत के गेयपदों की अमित रचना की हैं जिनमें लोक-काव्य के लालित्य के साथ काव्य की अभिजात उत्तमताओं का समावेश भावात्मक सौरस्य के साथ हुआ है।

स्वभाव से आचार्य जी अत्यंत वाम्पी, विदग्ध और भावुक व्यक्ति थे। कभी कुछ लोगों को उनका व्यवहार कठोर और पीछे हटाने वाला लगता था पर इस ऊपरी कठोरता के भीतर कोमल, सरस और उदार हृदय था। कभी किसी को देने में उन्होंने कार्पण्य नहीं किया, जो सामने आया, दे दिया। जीवन संग्राम के कठिन-तम क्षणों में भी वे हंसते और हंसाते रहकर अपनी जिन्दादिली का परिचय देते थे। इधर सेवा-निवृत्त जीवन में एकांत-भाव से संगीत क्षेत्र में काम करने के लिए जुट गये थे। उनके अनेक भाषण, लेख, वार्ताएं, इन्टरव्यू आकाशवाणी के संग्रहालय में तथा अन्यत्र टेप-रिकार्ड के रूप में हैं। उन्होंने सदा एक नफासत की शाही जिन्दगी बिताई। रुचि की कलात्मकता और नूतन विधान की क्षमता उनके हर काम में थी। ऐसी दिव्य महाविभूति ने 31 जुलाई, 1979 ई० को धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्र में कार्यरत रहकर अकस्मात् अपनी जीवन-लीला पूरी कर ली। वे कहा करते थे कि अभी बहुत कुछ करना है, जिन्दगी चाहिए, अथवा इसे पूरा करने के लिए फिर जन्म लेना पड़ेगा।

सेवा-निवृत्त होकर आचार्य जी उपर्युक्त कारणों से प्राचीन ग्रंथों के उद्धार के कार्य में ही एकांत भाव से जुट गये। भरत और अभिनवगुप्तपादाचार्य को उन्होंने

भली प्रकार समझा और अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाओं का निराकारण करने के लिए इन मूल ग्रन्थों की दुर्बोध्य गांठों को खोलकर उन्हें सुबोध बनाने के लिए इनपर भाष्य की रचना की। शास्त्रीय परम्परा की अखण्डता बनाये रखने की दृष्टि से उन्होंने संस्कृत में संजीवन भाष्य लिखा। सर्व सुबोधता की दृष्टि से हिन्दी में साधना टीका भी प्रस्तुत की। हिन्दी टीका को अपनी दिवंगत पूर्व पत्नी का नाम देकर अपनी उपलब्धियों में उस पतिप्राणा के सहयोग को उन्होंने स्वीकार किया है। वे इसे स्वयं प्रकाशित करना चाहते थे। उसी प्रकार के अन्य भाष्य और टीकाएं लिखने की योजना थी। संगीत रत्नाकर के एक अंश की टीका वे कर भी चुके थे।

उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुलोचना बृहस्पति और उनके पुत्र उनकी योजनाओं को यथाशक्ति पूरा करने में लगे हैं और उनके ग्रंथों का प्रकाशन शीघ्र करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

प्राचीन शास्त्रों का स्पष्टीकरण

संगीत कला पर अनेक ग्रन्थों की रचना शताब्दियों से होती चली आई है। जो प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हैं वे मुख्यतः संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं, अतः इन ग्रन्थों का अध्ययन उन विद्वानों को सुलभ है जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान हो और जिन्हें संगीत शास्त्र के रहस्यों को जानने की तीव्र इच्छा भी हो। महर्षि भरत द्वारा रचित नाट्य-शास्त्र ग्रन्थ में संगीत पर जो अध्याय लिखे गए, वे समय की गति के साथ-साथ अस्पष्ट हो गए। यहां तक कि 13वीं शताब्दी के पश्चात् धीरे-धीरे इन ग्रन्थों को समझना अति कठिन हो गया। भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थितियों ने विद्वानों को और इनके ग्रन्थों को राज्याश्रय से दूर कर दिया, फलस्वरूप भावी पीढ़ियों ने भी इन ग्रन्थों का महत्त्व नहीं समझा।

मेल पद्धति का विकास हो जाने पर भारतीय संगीत के प्राचीन सिद्धान्त विल्कुल लुप्त हो गए और धीरे-धीरे उत्तर-दक्षिण दोनों संगीत पद्धतियों में बहुत अन्तर आ गया। साथ ही अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न हो गयीं। मध्य युग से आधुनिक काल तक प्राचीन ग्रंथों की जितनी भी टीकाएं लिखी गई हैं, वे स्वयं विवादास्पद हो गईं। आधुनिक युग के संगीत शास्त्री स्व० भाखतपड़े जी ने संगीत शास्त्र पर बहुत कार्य किया है किन्तु उनके ग्रन्थों ने संगीत क्षेत्र में बहुत-सी भ्रामक विचारधाराओं का प्रचार कर दिया।

बीसवीं सदी के मूर्धन्य विद्वान आचार्य कैलाश चन्द्रदेव बृहस्पति ने जिनको संगीत के दोनों पक्षों (क्रियात्मक तथा शास्त्र) का ज्ञान था और लगाव भी। जीवन पर्यन्त संगीत के मूल प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किया। जिन लोगों ने महर्षि भरत और पं० शाङ्गदेव जैसे विद्वानों के वाक्यों को नहीं समझा, उनके

लिए इन ग्रन्थों का कोई मूल्य और महत्त्व नहीं है। यह बात आचार्य बृहस्पति को सहन नहीं हुई और उन्होंने इन ऋषि मुनियों के तर्पण हेतु उनके ग्रन्थों को लोक के लिए स्पष्ट करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इन ग्रन्थों के एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य का मनन किया, इस प्रकार सैकड़ों वर्षों से पड़ी हुई इन ग्रन्थों की धूलि को स्वच्छ करने का पवित्र कार्य आचार्य जी ने ही किया। उनकी स्वरचित पुस्तकें और अनेक महत्त्वपूर्ण लेख इस बात का प्रमाण हैं। स्व० भातखंडे जी ने जो कार्य अमूरा छोड़ा उनका कार्य तर्कसम्मत प्रश्नोत्तरों द्वारा आचार्य महोदय ने पूर्ण किया। आचार्य जी के व्यक्तिगत जीवन पर पिछले पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य, संगीत, भाषा और कला का अनूठा मिश्रण इस व्यक्ति में जो दृष्टिगत हुआ, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

सन् 1955 ई० में आचार्य बृहस्पति ने 'संगीत रत्नाकर' की स्वरविधि को स्पष्ट कर लिया था जिससे उसमें वर्णित जातियों और रागों को गाकर और बजाकर स्पष्ट करना संभव हो सका। 1957 ई० में आपने कुछ वाद्यों का निर्माण किया। अपने द्वारा बनाये 'श्रुति दर्पण' और 'बृहस्पति वीणा' वाद्यों पर भरत-पद्धति से स्वरों की स्थापना करके दोनों ग्रामों और वाईसों श्रुतियों का सप्रयोग प्रदर्शन बम्बई की एक सभा में किया। उसी वर्ष आचार्य महोदय ने षाड्जी जाति के विभिन्न रूपों का प्रदर्शन प्रयोगात्मक रूप में किया और यह जातिगायन आज भी संगीत नाटक ऐकेडमी की टेप लाइब्रेरी में सुरक्षित है। इस 'जाति गान प्रदर्शन' ने लोगों को आश्चर्य में डाल दिया और सन् 1958 और 59 में भारत-वर्ष के प्रमुख संगीत क्षेत्रों में आचार्य जी के इस अनुसन्धान की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई जिसका उल्लेख 'संगीत कला विहार' पत्रिकाओं में हुआ है।

आचार्य बृहस्पति ने प्राचीन सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष प्रयोग में लाकर दिखा दिया। इसी समय 1959 ई० में उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की भूमिका विद्यापारखी ठाकुर जयदेव सिंह द्वारा लिखी गई है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि "मूर्च्छनाओं का इतना विशद और पांडित्यपूर्ण वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।¹ भरत के सिद्धान्तों को समझने के लिए यह अत्युत्तम कृति है। लेखक ने इसकी रचना करके संगीत के विद्यार्थियों का बहुत उपकार किया है।"²

शाङ्गदेव के बाद अनेक विद्वानों ने मेल-पद्धति पर ग्रन्थ लिखे जिस पर ईरानी संगीत का प्रभाव पड़ता गया। मध्य युग के इतिहास से यह स्पष्ट है कि मुसलमानों के प्रवेश के साथ-साथ सूफी धर्म-प्रचारकों ने भारतीय संगीत को

1. भरत का संगीत सिद्धान्त, भा० बृहस्पति, पृ० 10 (भूमिका)।

2. वही, पृ० 13।

प्रभावित किया। भारत का प्राचीन संगीत लोग भूल गए और प्राचीन ग्रन्थ भी दुरुह हो गए। अलवरूनी, जो गजनवी शासकों के साथ भारतवर्ष आया था, उसने अपने समय का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है कि “हिन्दू विद्याएं वहां चली गईं जहां हमारी पहुंच नहीं थी”⁴ 13वीं शताब्दी के अंत में राजनैतिक परिस्थितियां बहुत बदल गईं। देवगिरि का राजवंश मुसलमानों के हाथ में आ गया और हिन्दू विद्वानों को जबरदस्ती उत्तर भारत में अलाउद्दीन के दरबार में लाया गया। किंतु विद्या जबरदस्ती किसी से न ली जा सकती है और न दी जा सकती है।

मुकाम पद्धति का सबसे पहला ग्रन्थ 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ‘स्वर-मेल-कलानिधि’ लिखा गया जिसके रचयिता रामामात्य हैं। धीरे-धीरे शताब्दियां बीतती चली गईं और संगीत के विद्यार्थी नये-नये ग्रन्थों का अध्ययन नये दृष्टिकोण से करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय संगीत के रहस्य अतीत के गर्भ में चले गए। उनको समझने की आवश्यकता किसी ने नहीं समझी।

आचार्य बृहस्पति ने अपने ग्रन्थ ‘भरत का संगीत सिद्धान्त’ में पृ० 44 पर लिखा है—

“भारतीय मूल ग्रन्थों से अपरिचय, संस्कृत भाषा के पठन-पाठन की परम्परा के ह्रास, प्राचीन सम्प्रदायों के लोप एवं मैकाले महोदय की शिक्षा योजना के परिणाम-स्वरूप बड़ी-बड़ी मनोरंजक बातें कहने वाले व्यक्ति भारत में ही उत्पन्न हुए।”

इस स्थिति से संगीत क्षेत्र भी अछूता न रहा। नाट्यशास्त्र को अपने दर्शन से कृतकृत्य करने से पूर्व ही पंडितमान्य मनीषियों (!) ने उसे अस्पष्ट घोषित कर डाला। कुछ सज्जनों ने यह व्यवस्था दे दी कि संस्कृत भाषा के शब्द अनेकार्थ-वाची होते हैं, फलतः ग्रन्थों के वास्तविक तात्पर्य का समझा जाना संभव नहीं।

आचार्य बृहस्पति बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। वे शोधकर्त्ता के साथ ही साथ गंभीर विचारक और आलोचक भी थे। ठाकुरजयदेव सिंह ने 30 अप्रैल, 1957 ई० में बम्बई की एक सभा में कहा था, “भरत जैसे आप्त सूत्रकार के विषय में भ्रान्त धारणाओं के प्रचार से आचार्य बृहस्पति के हृदय को कष्ट पहुंचा और उन्होंने मौन रहकर अपने जीवन का प्रमुख भाग संगीत के भारतीय आचार्यों को समझने में दिया। ‘भरत नाट्य शास्त्र’ की कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथियों को आचार्य बृहस्पति ने निवृत्तापूर्ण ढंग से सुलझाया है। महर्षि भरत के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण एक राष्ट्रीय प्रश्न है।”

(संगीत, जून, 1957, पृ० 54)

1. अलवरूनी का भारत, पृ० 37।

आचार्य जी का दूसरा ग्रन्थ 'संगीत चिन्तामणि' सन् 1966 में छपा था। यह ग्रन्थ विविध निबन्धों का संकलन है जो कई पक्षों को लेकर लिखे गए हैं। आचार्य महोदय ने बहुत अनुसंधान के बाद इन निबन्धों को लिखा है जिनमें ऐतिहासिक पक्ष, सैद्धान्तिक पक्ष और रामपुर-परम्परा तथा स्व० भातखंडे जी की रचनाओं पर इस परम्परा के प्रभाव पर विचार किया गया है। इस ग्रन्थ का प्रत्येक लेख महत्त्वपूर्ण है जो कि बहुत शोध कार्य के बाद और गंभीर अध्ययन करके लिखा गया है। संगीत की उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के लिए इस पुस्तक की उपयोगिता तभी सिद्ध हो सकती है जबकि इनके शिक्षक और विद्यार्थीगण ऐसी पुस्तक का मनन करें और विचार करें। डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती के विचार में—

“नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर के स्पष्टीकरण में विशेषतः ग्राम-मूर्च्छना और सारणा-व्यवस्था पर नवीन आलोकपात डॉ० बृहस्पति द्वारा ही हुआ है। डॉ० बृहस्पति ने ही 'तड्डत्' शब्द का असली अर्थ खोज निकाला और 'भरत का संगीत सिद्धान्त' में इसे स्पष्ट किया है। 'संगीत चिन्तामणि' के कुछ लेखों में उन्होंने शाङ्गदेव के विवेचनों को स्पष्ट किया है, जो अब तक अंधकार में था।”

(संगीत, जुलाई, अंक 1976 पृ० 19)

आचार्य बृहस्पति की प्रतिभा और उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय 'संगीत चिन्तामणि' के निबन्धों में मिलता है। वे संगीत के महान शास्त्रज्ञ, विश्लेषक, विचारक और आलोचक भी हैं। श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति व राग शब्दों का अर्थ व प्रयोग भरत काल से अब तक किस प्रकार हुआ है, इसे अपने लेखों में उन्होंने स्पष्ट किया है।

आचार्य बृहस्पति द्वारा प्रस्तुत श्रुतियों के मूल्य

सेवर्ट पद्धति में सप्तक के एक स्थान को 301 समान घटकों में बांटा जाता है। श्रुतियों को प्रमाण के अनुसार आचार्य बृहस्पति ने नये नाम दिये हैं। ये श्रुतियां तीन प्रकार की हैं: महति, उपमहति और कौशिकी अथवा प्रमाणश्रुति। महति श्रुति का परिमाण 23 घटक, उपमहति श्रुति का परिमाण 18 घटक और कौशिकी श्रुति का परिमाण 5 घटक माना है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों को जिस प्रकार चतुःश्रुति, द्विश्रुति त्रिश्रुति कहा जाता है उसी अनुसार आचार्य जी ने चतुःश्रुति स्वरों में दो प्रमाण श्रुति, एक उपमहति श्रुति और एक महति श्रुति; त्रिश्रुति स्वरों में एक प्रमाण श्रुति, एक उपमहति श्रुति और एक महति श्रुति; और द्विश्रुति स्वरों में एक प्रमाण श्रुति और एक महति श्रुति बतायी है। इस प्रकार एक सप्तक में 10 प्रमाण श्रुतियां, 5 उपमहति

श्रुतियां और 7 महति श्रुतियां होने से सम्पूर्ण योग 301 होता है। निम्न मंडल-प्रस्तार द्वारा श्रुतियों और स्वरों की स्थिति स्पष्ट होती है—

		(नि)		स		
	5	18	23	5	18	23
	प्र०	उ०	म०	प्र०	उ०	म०
नि	5 प्र०					प्र० 5 रे
	23 म०					म० 23
ध	5 प्र०					प्र० 5 ग
	23 म०					प्र० 5
	18 उ०					उ० 18 (ग)
	प्र०	म०	उ०	प्र०	प्र०	म०
	5	23	18	5	5	23
	प				म	

‘ग्राम’ और ‘ग्रामणी’ स्वरों की व्याख्या

आचार्य महोदय ने इन दोनों शब्दों का अर्थ बहुत स्वाभाविक व सरल ढंग से समझाया है। उन्होंने ‘ग्राम’ शब्द का अर्थ एक ‘गांव’ से लिया है। गांव में एक वस्ती होती है जिसमें समूह में लोग निवास करते हैं। प्रत्येक गांव की अपनी एक विशिष्ट व्यवस्था होती है। गांव का एक मुखिया चुना जाता है जो गांव की देख-रेख करता है जिसे गांव वाले ‘चौधरी’ भी कहते हैं। उसी प्रकार संगीत में उस स्वर-समूह को, जो विशिष्ट व्यवस्था से युक्त होता है, ‘ग्राम’ कहते हैं। जिस मुख्य स्वर के अधीन यह स्वर-व्यवस्था होगी उस स्वर को ‘ग्रामणी’ कहते हैं। इस शब्द का उल्लेख केवल एक बार बृहदेशी में आया है। सर्व-प्रथम आचार्य जी ने ही इस शब्द की अच्छी व्याख्या की है।

भरत संप्रदाय में षड्ज और मध्यम दो स्वर ग्रामणी हैं। ग्रामणी स्वर की मुख्य तीन विशेषताएं आचार्य जी ने इस प्रकार दी हैं—

‘ग्रामणी’ स्वर स्वयं चतुःश्रुति होता चाहिए जिसके दो संवादी स्वर सप्तक में हों और ग्रामणी स्वर से अगला स्वर त्रिश्रुतिक हो।”¹

1. संगीत चिन्तामणि, आ० बृहस्पति, पृ० 156।

ध्वनि-संवाद के प्रकार

संवाद के ये दो भेद और उनकी ये संज्ञाएं आचार्य जी ने ही सर्वप्रथम कही हैं। संगीत शास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि षड्ज ग्राम में मध्यम और निषाद के बीच नौ श्रुति का अंतराल होने पर भी भरत ने 'मनि' को संवाद जोड़ियों में गिना है, इस तथ्य को अभिनवगुप्त ने स्पष्ट किया है। मतंग ने भी संवाद के लिए नौ और तेरह श्रुतियों के अंतराल के साथ-साथ समश्रुतिकता की शर्त भी कही है। इसी समश्रुतिकता की शर्त को अभिनवगुप्तपाद ने रागों और जातियों के उदाहरण से समझाया है। बात यह है कि नौ श्रुति के अंतराल से संवाद बन जायेगा किन्तु जाति या राग के प्रयोग में आज की भाषा में सवाल-जवाब की संभावना केवल इन अंतरालों से नहीं बन पाती। उसके लिए तो समश्रुतिकता यानी जिन दो स्वरों के बीच संवाद होना है, उनकी अपनी श्रुतियां भी समान होना आवश्यक है। मध्य और निषाद की अपनी श्रुतियां समान नहीं हैं क्योंकि यह मध्यम चार श्रुति का और निषाद दो श्रुति का है। इसलिए ये दो स्वर सर्वोत्तम सवाल-जवाब का आधार नहीं हो सकते हैं। इस नियम को स्पष्ट करने के लिए आचार्य जी ने ध्वनि-संवाद और राग-संवाद इन दो नामों की कल्पना की है। मध्यम और निषाद के बीच ध्वनिसंवाद तो है किन्तु राग-संवाद नहीं है।

द्वादश स्वर-मूर्च्छना का स्पष्टीकरण

भरत के नाट्य-शास्त्र में केवल सप्त स्वर मूर्च्छना कही गई हैं और जातियों के वर्णन में किसी भी जाति के लिए किसी विशेष मूर्च्छना का निर्देश नहीं किया गया है। मतंग के बृहद्देशी में सप्त स्वर के साथ-साथ द्वादश स्वर मूर्च्छना भी कही गई है और जातियों के वर्णन में प्रत्येक जाति के लिए किसी मूर्च्छना का निर्देश किया गया है। जातियों के लिए मूर्च्छना निर्देश का रहस्य आचार्य जी ने ही उद्घाटित किया है। उन्होंने जाति के लिए मूर्च्छना निर्देश को द्वादश-स्वर मूर्च्छना के साथ जोड़ा है, इस तथ्य की ओर उन्होंने ही सर्व प्रथम ध्यान दिया है कि जातियों के लिए मूर्च्छना-निर्देश करते समय कभी भी उत्तर-मुद्रा आदि नाम नहीं दिये गये हैं। ये नाम तो सप्त-स्वर मूर्च्छनाओं के साथ जुड़े हुए हैं किन्तु जातियों में जो मूर्च्छनाएं बतायी गई हैं उन्हें षड्जादि, मध्यमादि इस प्रकार के नाम दिये गए हैं। आचार्य जी का कहना है कि ये नाम द्वादश स्वर-मूर्च्छना के वाचक हैं, सप्त स्वर मूर्च्छनाओं के नहीं और इनके निर्देशक का कारण है सारिका वाले वाद्यों को मिलाने की विशेष प्रक्रिया।

इस प्रकार जातियों के प्रसंग में षड्जादि जैसे मूर्च्छना नामों का अर्थ बताने का प्रयत्न सबसे पहले आचार्य जी ने किया है। संगीत चिन्तामणि के

‘मतंग मुनि के कुछ निर्णायक कथन’ अध्याय में आचार्य महोदय ने उनके ग्रन्थ ‘वृहद्देशी’ के पाठों पर गंभीर विचार किया है। मतंग मुनि के अनुसार भरत मुनि ऋषभ से आरंभ होने वाले श्रुतिमंडल का निदर्शन करते हैं। इसका कारण है दोनों ग्रामों की अंतर-मूर्च्छनाओं का प्रतिपादन। अथवा दोनों ग्रामों में षड्ज और मध्यम ही ग्रामणी (प्रधान) होते हैं और अन्य स्वर इनके पश्चात् आते हैं। द्वादश स्वर मूर्च्छना की चर्चा नाट्यशास्त्र में नहीं है। मतंग ने इसकी चर्चा की है जिसका तात्पर्य मंद्र और तार स्थान का सीमित प्रयोग है। “द्वादश स्वर संपन्ना ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः। जातिभाषादि-सिद्ध्यर्थं तारमंद्रादिसिद्ध्ये।”

“मतंग ने मूर्च्छना में राग की सिद्धि भी ढूंढ़नी चाही। उनका तात्पर्य था कि मूर्च्छना में मन्द्र तथा तार स्थान के भी कुछ स्वर सम्मिलित होने चाहिए। मन्द्र और तार स्वरों के दर्शन से ही राग की सिद्धि हो सकती है। फलतः मूर्च्छना में बारह स्वर होने चाहिए।”

—भरत का संगीत सिद्धान्त

आचार्य बृहस्पति, पृ० 51

कोहल ने कहा है—“जाति, राग और रागभाषाओं की सिद्धि के लिए मूर्च्छना का स्थापन करके बुद्धिमानों को चाहिए कि सदा लक्ष्य के अनुसार स्वरक्रम की योजना करें।”¹

नंदिकेश्वर ने कहा है—“जाति, भाषा तथा तारमंद्र इत्यादि की सिद्धि के लिए बुद्धिमानों को मूर्च्छना द्वादशस्वर सम्पन्न जानना चाहिए।”²

उपरोक्त तथ्य मतंग को द्वादश स्वर मूर्च्छनावাদ का ‘अनुयायी’ बतलाता है। आचार्य बृहस्पति ने लिखा है कि वीणावादकों ने अपनी सुविधा के लिए इसको अपनाया ताकि किसी ‘जाति’ वादन के समय उन्हें सारिकाओं को उतारना-चढ़ाना न पड़े।

अंश स्वर का स्पष्टीकरण

‘अंश स्वर’ ही ‘स्थायी स्वर’ है, इस तथ्य पर आचार्य महोदय ने बहुत जोर दिया है, ‘जातियों’ एवं ‘रागों’ के प्रत्यक्ष प्रयोग करने के लिए इस रहस्य का ज्ञान अनिवार्य है। यह ‘स्थायी स्वर’ ‘की-नोट’ या ‘टोनिक’ का ही वाचक है।

जिस प्रकार वीणा के मध्यम स्वर को मध्य स्थान का आरंभ स्थान मानकर तीनों स्थानों की प्राप्ति की जाती है, उसी प्रकार गायक मध्य-सप्तक को आरंभक स्वर मानकर मंद्र और तार स्थानों के स्वरों की प्राप्ति करें तो इसे ‘कंठ्य अंश’ कहेंगे और पाश्चात्यों की भाषा में यह गायक का ‘स्टैंडर्ड नोट’ है।

1. संगीत चिन्तामणि, आ० बृहस्पति, पृ० 67।

2. वही।

ग्राम राग, रागभाषाओं का रूप

भरत ने सात ग्राम रागों के नाममात्र दिये हैं जबकि मतंग ने ग्राम रागों के लक्षण और प्रस्तार दिये हैं जो उन्हें संभवतः कोहल के ग्रंथ से प्राप्त हुए थे। ग्राम रागों के आलाप प्रकार भाषा कहलाते हैं, भाषा शब्द का अर्थ यहां प्रकार है। इसी प्रकार विभाषा और अन्तरभाषा शब्द भी क्रमशः (भाषा से विभाषा, विभाषा से अन्तरभाषा) उत्पन्न आलाप प्रकारों के वाचक हैं, रंजक होने के कारण इन सबको भी राग समझा जाना चाहिए।

—भरत का संगीत सिद्धान्त

आचार्य बृहस्पति, पृ० 25

इन मनीषियों ने संवाद, स्वर ग्राम, श्रुति, मूर्च्छना, जाति और राग का प्रतिपादन हमारी सुविधा के लिए ही किया है।

‘नाट्यशास्त्र’ में जातियों के लक्षण दिए गए हैं, मतंग ने उन ‘जातियों’ के चलन भी दिये हैं। ‘रत्नाकर’ में ‘जातियों’ के प्रस्तार मतंग के अनुसार ही दिये हैं। साथ ही उसमें गेय पद भी मिलते हैं, जिनका विषय ‘शिवस्तुति’ है।

जातियों का पुनरुद्धार

जातियों के प्रस्तार सा री ग म आदि संकेत चिह्नों के माध्यम से सर्वप्रथम बृहद्देशी में दिये गये। संगीत रत्नाकर में उसकी स्वरलिपि के साथ-साथ पद को भी रख दिया गया है। इस स्वरलिपि आधार पर तथा जाति लक्षणों के अनुसार इस स्वरलिपि का परीक्षण करते हुए उन्हें प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा स्पष्ट करने अर्थात् गाकर दिखाने का प्रयत्न एक मात्र आचार्य जी ने ही किया है। अनेक संगीत सेमीनारों में तथा अपने भाषा में आचार्य जी ने जातियों के लक्षणों को उदाहरण देकर स्पष्ट समझाया। कुछ लेख भी लिखे जिसमें जाति-प्रस्तार को स्वरलिपि देकर समझाया है। अपने शिष्यों द्वारा इसको प्रयोगात्मक रूप में भी गवाया है जिसमें आपकी प्रमुख शिष्या व सहधर्मिणी श्रीमती सुलोचना बृहस्पति को जाति-गायन की शिक्षा दी है। इसके अतिरिक्त संगीत नाटक ऐकेडमी, दिल्ली की टेप-लाइब्रेरी में भी आचार्य जी द्वारा प्रस्तुत जातिगायन सुरक्षित है जिससे संगीत जगत के विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं।

मुक्त-तंत्री तथा सारिकायुक्त वीणा का स्पष्टीकरण

सारिकायुक्त अर्थात् परदों वाली और सारिकाहीन अर्थात् बिना पदों वाली ‘मुक्त-तंत्री’ वीणा वादों के अन्तर की ओर सबसे पहले आचार्य जी ने ही ध्यान दिलाया। भरतकाल की वीणा सारिकाहीन थी और वही ग्राम-मूर्च्छना पद्धति का आधार थी, इस बात पर काफी जोर दिया है। मुक्त-तंत्री वाले वाद्यों में

विभिन्न मूर्च्छनाएं स्थापित करने की जो सुविधा होती है वह पर्दे वाली वीणा पर नहीं होती, इस बात पर ध्यान दिलाकर आचार्य जी ने स्वर व राग संबंधी चिन्तन के प्रसंग में वाद्यों पर विचार की आवश्यकता पर भी जोर दिया है।

स्वरोत्पत्ति के दो स्थानी नाट्यशास्त्र में बताए गए हैं, वीणा और शरीर। इनमें लकड़ी की वीणा का महत्त्व सर्वोपरि है क्योंकि इसको ही आधार मानकर श्रुतियों का निदर्शन तथा विवेचन किया गया है। भरत ने इक्कीस तारों वाली वीणा के माध्यम से बाईस श्रुतियों का विवेचन किया है।

महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त ने गुरुमुख से 'नाट्यशास्त्र' की शिक्षा ग्रहण की थी और वे स्वयं वीणावादन में दक्ष थे। अतः आचार्य बृहस्पति ने 'अभिनव भारती' के मतों का उल्लेख किया है।

इतिहासपरक अनुसंधान

ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संगीत पर विदेशी प्रभाव के विषय में दो परस्पर विरोधी मत प्रचलित रहे हैं। आचार्य बृहस्पति ने ठोस प्रमाणों के आधार पर इन दोनों का ही खंडन किया है। एक मत के अनुसार तो कर्नाटकी संगीत पद्धति विदेशी प्रभाव से सर्वथा अछूती रही है और हिन्दुस्तानी संगीत पर विदेशी प्रभाव काफी पड़ा है। इस मत के प्रचारक थे स्वर्गीय पं० भातखण्डे जी और दूसरे मत के अनुसार हिन्दुस्तानी पद्धति विदेशी प्रभाव से सर्वथा मुक्त है। इस मत के प्रतिपादक पं० ओंकारनाथ ठाकुर थे। प्रथम मत का खण्डन करते हुए आचार्य जी ने सिद्ध किया है कि दक्षिण में निष्पन्न मेल पद्धति विदेशी प्रभाव का ही परिणाम है। मेल या ठाठ पद्धति का हिन्दुस्तानी संगीत में जितना भी प्रभाव है, उससे विदेशी प्रभाव प्रमाणित होता है, इस मत का प्रतिपादन आचार्य बृहस्पति ने किया।

14वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन खिलजी और अमीर खुसरो की मृत्यु हो चुकी थी। अलाउद्दीन ने अपने साम्राज्य का विस्तार संपूर्ण भारत में सुदूर दक्षिण तक कर लिया था, तो यह किस प्रकार संभव है कि दक्षिण की संगीत पद्धति विदेशियों के प्रभाव से अछूती रही हो। उत्तर भारत के कलाकार दक्षिण जाते रहे और उसी प्रकार दक्षिण के कलाकारों को भी मुस्लिम दरबारों में अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए जाना पड़ा।

1336 ई० में दक्षिण के विजय नगर साम्राज्य की नींव दक्षिण के ही विद्वान पं० विद्यारण्य के प्रयत्न से पड़ी थी। इस विद्वान ने देश के हर कोने से संगीत के विद्वानों को बुलाकर शेष वचे रागों को एकत्र किया। 'संगीत चिन्तामणि' प्रथम खंड (द्वितीय संस्करण) पृ० 25।

इस समय संगीत की स्थिति बहुत उलझी हुई दशा में थी। प्राचीन ग्रन्थों के

अर्थ लोगों की समझ से बाहर थे। उत्तर भारत में अमीर खुसरो की पद्धति प्रचार में थी और उसका प्रभाव दक्षिण भारत में भी फैला हुआ था। यही कारण है कि विद्यारण्य ने वीणा की सारिकाओं के आधार पर अष्टक के अनुसार प्राप्त रागों को वर्गीकृत कर दिया। इन अष्टकों को ही 'मेल' भाम दिया है। इस कारण विद्यारण्य को ही 'मेल' शब्द का जन्मदाता कहते हैं।¹ यह विद्वान कला-पारखी और कुशल राजनीतिज्ञ भी था। विजयनगर साम्राज्य 14वीं शताब्दी के मध्य-काल में खूब फला-फूला, यहां समस्त भारत से विद्वान और कलाकार बड़ी संख्या में आते रहे। इनमें मुस्लिम प्रभाव से प्रभावित वीणावादक भी थे जो उत्तर भारत से विजयनगर आए।

दिल्ली के शासक मुहम्मद तुगलक के शासन में बड़ी अव्यवस्था थी, उसने दिल्ली राजधानी ही बदल दी। दक्षिण भारत में स्थित देवगिरि को 1326-27 में राजधानी बनाई, जिसका नाम उसने दौलताबाद रख दिया। दिल्ली निवासियों को भी मजबूरी से दक्षिण जाना पड़ा, इनमें बहुत से विद्वान और कलाकार भी रहे होंगे।² कालान्तर में बहुत से लोग वहीं पर बस गए। दक्षिण भारत पर मुस्लिम प्रभाव का यह ऐतिहासिक प्रमाण है।

दक्षिण भारत में बहमनी राजवंश भी स्थापित था जो सदा से हिन्दू विरोधी था और जिसकी जन्मजात शत्रुता विजयनगर साम्राज्य से थी। 14वीं शताब्दी के अन्त में दोनों राज्यों में युद्ध छिड़ गया, जिसमें विजयनगर के शासक देवराय प्रथम को अपनी पुत्री का विवाह बहमनी शासक फीरोज के पुत्र हसन के साथ करना पड़ा।³

देवराय द्वितीय ने भी अपने शासनकाल में मुसलमानों को बहुत सम्मान दिया, यहां तक कि अपने सभागार में राजसिंहासन के सामने एक ऊंचे और बहुमूल्य पीठ पर 'कुरान शरीफ' रखने का आदेश दिया।⁴

इस प्रकार मुसलमानों से पूर्णतया प्रभावित हिन्दू साम्राज्य में प्रचलित संगीत पर मुस्लिम मुकाम-सिद्धांत का प्रभाव पड़ गया। इसी युग में दक्षिण के विद्वान कल्लिनाथ ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने 'संगीत रत्नाकर' को समझा था और उसकी टीका लिखी। कल्लिनाथ ने 'रागाध्याय' में निम्न बातों का उल्लेख किया है—

(अ) प्रत्येक राग 'सा' से प्रारंभ किया जाता है।

(ब) षड्ज का संवादी पंचम ही रह गया है।

1. संगीत चिन्तामणि, प्रथम खण्ड (द्वितीय संस्करण), पृ० 225।

2. वही।

3. वही, पृ० 265।

4. वही, पृ० 266।

5. वही, पृ० 266-67।

(स) हिंदोल में ऋषभ-धैवत के लोप के स्थान पर ऋषभ-पंचम का लोप होने लगा है ।

(द) राग के अनुसार रस आदि के विनियोग में अनियम देखा जाता है ।

तात्पर्य यह कि रामामात्य से सौ वर्ष पूर्व दक्षिण भारत का संगीत अवैदिक हो गया था, ग्राम-मूर्च्छना पद्धति लुप्त हो चुकी थी । राग-वर्गीकरण का मेल-सिद्धांत सब व्यवहार में ला चुके थे । किंतु कल्लिनाथ संगीत के इस परिवर्तित रूप को देखकर भी मौन रहे । उन्होंने यही उचित समझा ।

आचार्य बृहस्पति द्वारा लिखित ऐतिहासिक ग्रन्थ

आचार्य महोदय ने प्राचीन ग्रन्थों का गहन अध्ययन करके उन सभी ग्रन्थों का निचोड़, संगीत जगत् के सामने रख दिया है । अब भरत, अभिनवगुप्त, मतंग, शाङ्गदेव, अमीर खुसरो, तानसेन तथा भातखण्डे आदि से संगीत का प्रत्येक विद्यार्थी परिचित है और उनके ग्रन्थों के रहस्यों को विवेक बुद्धि से पढ़ सकता है । आचार्य जी ने युगों का अन्धकार अपने शोध कार्यों से दूर किया और अनेक ऐतिहासिक भ्रान्तियां अपने नीर-क्षीर विवेचन द्वारा स्पष्ट कीं । आज संगीत क्षेत्र में किसी समस्या का सामाधान आचार्य की विभिन्न पुस्तकों द्वारा किया जाता है ।

आचार्य जी सामान्य व्यक्तियों की तरह जीवन व्यतीत नहीं करते थे । उनका हर काम एक अनोखापन लिये हुए रहता था । किसी भी सत्य की खोज करने के लिए वे दिन रात एक कर देते थे और विश्लेषणात्मक विवेचन के पश्चात् अपना मत निश्चित रूप से लिखते थे जो कि प्रामाणिक होता था । आचार्य महोदय कभी लिखी-लिखाई बातों पर तुरन्त विश्वास नहीं करते थे । संगीत के इतिहास में अनेक लेखकों ने मनगढ़न्त कहानियों का प्रचार किया है जिसका कोई प्रमाण नहीं है । संगीत के विद्यार्थियों के लिए प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखाने वाला एक ही विद्वान हुआ जिसने इतिहास की सत्यता को दुनिया के सामने रखा । वह विद्वान आचार्य बृहस्पति ही थे । इतिहास लिखने वालों की दृष्टि बहुत पैनी होती है, वे बाल की खाल तक निकाल लेते हैं । ऐसी दृष्टि आचार्य महोदय की थी । जहां एक ओर इतिहास के सभी लेखक अपनी-अपनी बात को राजनैतिक दृष्टि-कोण से लिखते हैं, उन्हें संगीत के तथ्यों से क्या सरोकार, वहां दूसरी ओर संगीत जगत के सामान्य लेखक गण संगीतकारों का इतिहास देते समय समसामयिक राजनैतिक परिस्थितियों को भूल जाते हैं । इसी कारण संगीत के इतिहास में उप-हासात्मक दंत-कथाएं प्रचलित हो गई हैं । आचार्य महोदय ने कभी किंवदन्तियों के आधार पर संगीत का इतिहास नहीं लिखा, जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिख दिया कि तानसेन मुसलमान हो गया था और उसकी समाधि ग्वालियर में है ।

तानसेन को मुसलमान बनाने का भ्रम

अधिकांश इतिहासकारों ने तानसेन को अकबरी दरबार का कलाकार होने के नाते उसे हिन्दू से मुसलमान होना सिद्ध किया है। किन्तु इस तथ्य को आचार्य बृहस्पति ने जिस सुन्दर और वैज्ञानिक ढंग से समझाया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। तानसेन का अंत तक हिन्दू रहना और मुसलमान धर्म का अनुयायी न होना, इस सत्य का अनावरण उन्होंने सप्रमाण किया है।

औरंगजेब संगीत प्रेमी था—कट्टर मुसलमान होते हुए भी औरंगजेब का संगीत के प्रति आदरभाव होना, दरबार में कलाकारों को उपाधियां व सम्मान प्रकट करना इस बात की पुष्टि आचार्य बृहस्पति द्वारा ही सर्वप्रथम की गई है, जबकि औरंगजेब को संगीत का शत्रु और विरोधी कहने वाले अनेक इतिहासकार और संगीतज्ञ हैं जिन्होंने इस प्रकार के गलत प्रचार से संगीत के विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया है। आचार्य बृहस्पति ने वर्षों के परिश्रम के बाद इन ऐतिहासिक पुस्तकों की रचना की है जो संगीत के लिए वरदान हैं।

मुसलमान और भारतीय संगीत—पुस्तक मुलतः मुस्लिम शासन काल पर लिखी गई है। भारतवर्ष में मुसलमानों के शासनकाल में पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से अनेक विदेशी भारत में आते रहे। अतः उनके साथ आये विदेशी संगीतकारों का प्रभाव हमारे देश के संगीत पर भी पड़ा। आचार्य जी ने इन सभी ऐतिहासिक परिस्थितियों का गहन अध्ययन करके इस पुस्तक की रचना की है। संगीत का इतिहास लिखने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि इतिहास के मूल ग्रन्थों का अध्ययन विवेचनात्मक बुद्धि से किया जाये।

आचार्य महोदय स्वयं वर्षों शिक्षक रह चुके थे और अनेक विश्वविद्यालयों के संगीत शास्त्र के परीक्षक भी। उन्हें यह अनुभव हुआ कि संगीत के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त पुस्तकों का अभाव है। संगीत के शिक्षकों को भी उच्चस्तरीय संगीत की पुस्तकें प्राप्त नहीं होतीं। ऐसी दशा में संगीत का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। ऐतिहासिक पुस्तकों के इस अभाव की पूर्ति आचार्य महोदय के ही निर्देशन में श्रीमती सुलोचना बृहस्पति द्वारा लिखी गई पुस्तक 'खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार' द्वारा हुई है। प्रस्तुत पुस्तक संगीत के इतिहास की जानकारी के लिए अति महत्वपूर्ण है। इसकी भूमिका में दिये गये निम्न शब्दों से बात स्पष्ट होती है—

“प्रस्तुत पुस्तक उन प्रश्नों का सामाधान ढूँढने का विनम्र प्रयत्न है, जो संगीतज्ञों का इतिहास जानने के इच्छुक जिज्ञासुओं के मन में निरन्तर उठते रहते हैं। अमीर खुसरो, वैजू, तानसेन, गोपाल इत्यादि महाविभूतियों के नाम से संगीत न जानने वाले भी परिचित हैं और उनसे सम्बद्ध अनेक किंवदंतियों से भी इन

महापुरुषों और इनके समवर्ती अन्य कलाकारों से सम्बद्ध तथ्यों को एकत्र संजोने का सम्भवतः यह पहला प्रयत्न है।”

इस पुस्तक को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने पुरस्कृत किया है। संगीत के ऐतिहासिक सत्य को जिस निर्भीकता से लेखिका ने प्रकट किया है वह आचार्य के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। आचार्य बृहस्पति जितने विशालकाय थे उतने ही निर्भीक भी। अमीर खुसरो को अब तक सभी लेखक सितार व तबला वाद्यों का आविष्कारक मानते आ रहे थे और संगीत की पुस्तकों में भी अनेक लेखकों ने इस बात पर जोर देकर लिखा है। प्रथम बार संगीत के इतिहास में क्रान्तिकारी खोज आचार्य बृहस्पति द्वारा की गई, जिन्होंने अमीर खुसरो, जो 13वीं शताब्दी में अलाउद्दीन के शासनकाल में थे, उपरोक्त वाद्यों का आविष्कर्ता हैं—इस बात का खण्डन किया है। आचार्य बृहस्पति ने अपनी पुस्तक ‘मुसलमान और भारतीय संगीत’ में पृष्ठ 94 पर लिखा है कि—

“तबले और सितार का आविष्कार रंगिले के युग में खुसरो खां ने किया था। उस युग से पहले इन वाद्यों और इनके वादकों की चर्चा कहीं नहीं है, परन्तु इन वाद्यों के आविष्कार को अमीर खुसरो के मत्थे मढ़ देने का श्रेय भी मुहम्मद करम इमाम को ही है।”

उपरोक्त खुसरो खां सदारंग के भाई थे और उन्हीं की तरह संगीत के विद्वान थे, अनेक वाद्य बजाते थे जिसमें तीन तार वाले वाद्य ‘सितार’ पर सभी राग-रागिनियां कुशलतापूर्वक बजा लेते थे।

कोई भी कला अथवा विद्या गुरु के मार्गदर्शन बिना नहीं प्राप्त हो सकती है। किसी भी कलाकार की ख्याति सुनते ही जिज्ञासु हृदय का पहला प्रश्न होता है कि कौन इसका गुरु है। किन्तु किसी भी साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक पुस्तक ने इस बात का समाधान नहीं किया है कि स्वामी हरिदास जी के संगीत गुरु कौन थे। इस प्रश्न का उत्तर आचार्य ने दिया है। इसके अतिरिक्त गोपाल नाम्रक, बैजू आदि के बारे में नये तथ्यों की खोज भी की है। स्वामी हरिदास के गुरु के विषय में सभी लोग मौन हैं किन्तु आचार्य महोदय स्वामी जी को ग्वालियर के मानसिंह तोमर की ध्रुवपद शैली का शिष्य मानते हैं। अतः बैजू और बख्शू में से किसी एक संगीतज्ञ का शिष्य होना बताया है। इन सभी तथ्यों का स्पष्टीकरण आचार्य महोदय ने अपनी पुस्तक ‘ध्रुवपद और उसका विकास’ में किया है। यह पुस्तक आपका श्रेष्ठ व उच्चतम शोधकार्य है, जो संगीत के शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

आचार्य बृहस्पति धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे जिन्हें ईश्वर पर दृढ़ आस्था थी, शंकर उनके ईष्टदेव थे। साधु-महात्माओं का आशीर्वाद उन्हें सदा प्राप्त रहा। इसके अतिरिक्त जैन धर्म के मुनि श्री विद्यानन्द जी का आप पर बड़ा अनुग्रह था।

मुनि जी ने आचार्य जी को 13वीं शताब्दी के जैनाचार्य पार्श्वदेव कृत, प्राचीन संगीत ग्रन्थ 'संगीत समयसार' के सम्पादन एवं प्रामाणिक अनुवाद करने का आदेश दिया। आचार्य महोदय ने यह कार्य परिश्रम लगाकर सहर्ष किया और इस पुस्तक की भूमिका में निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

योगानन्दमयाः केचित् भोगानन्दपराः परे ।

वयं सर्वप्रदातारं विद्यानन्दमुपास्महे ॥

अर्थात्—

“कुछ लोग योग प्राप्य विभूतियों के पीछे पड़े हैं, तो कुछ लोग भोगों में मग्न हैं। हम तो विद्यानन्द (वास्तविक विद्या से प्राप्त होने वाले आनन्द) की उपासना करते हैं, जो समस्त प्राप्तव्य का देने वाला है”

राग रहस्य पर विचार

आचार्य बृहस्पति को संगीत जगत् एक 'म्यूजिकोलॉजिस्ट' के रूप में जानता है किन्तु संगीत के क्रियात्मक पक्ष पर भी उनका पूर्ण अधिकार था—इस बात से लोग अपरिचित थे। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन वे हमेशा दो दृष्टिकोणों से किया करते थे। एक ओर शास्त्र पक्ष का गहराई से मनन करना तो दूसरी ओर उसके प्रयोगात्मक ढंग पर विचार करना। यही कारण है कि आचार्य शाङ्गदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को समझने वाला विद्वान इस बीसवीं शताब्दी में हुआ है जिसने संगीत जगत् के सामने दुरूह समझे जाने वाले इस ग्रन्थ को दर्पण की भाँति खोलकर रख दिया।

स्व० भातखण्डे जी ने भी संगीत के शास्त्र पक्ष और क्रियात्मक पक्ष दोनों पर कार्य किया है और अपना पूरा जीवन संगीत की सेवा में लगा दिया। आपने संगीत शास्त्र के 4 भाग और क्रमिक पुस्तक मालिका के 6 भाग लिखे हैं। यह बहुत बड़ा कार्य हुआ है जिसके लिए संगीत जगत् इनका ऋणी है। भातखण्डे जी की सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद आचार्य बृहस्पति को जो अभाव इनकी कृतियों में दिखाई पड़ा उसकी पूर्ति आपने की और जो भ्रान्तियाँ आपके सामने आई उनका निराकरण भी किया।

क्रमिक पुस्तक मालिका के 6 भागों में दसों ठाढ़ों के रागों का वर्णन, स्वर-विस्तार, तान प्रस्तार और बन्दिशों के साथ दिया गया है। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भातखण्डे जी को ये बन्दिशें रामपुर के अनेक गुणियों से प्राप्त हुई हैं जिनका संकलन उन्होंने इन पुस्तकों में किया। चीजें पुरानी और घरानेदार होने पर भी दी गई स्वरलिपि के आधार पर गाये जाने पर भी गायकी में वह ओज व निखार नहीं आता है जैसा कि उस्तादों को प्रत्यक्ष संगीत उत्सवों में सुनते हैं। इसका क्या कारण है उस पर आचार्य बृहस्पति ने बहुत विचार किया

और रागों के रहस्य को जानने का प्रयत्न किया, साथ ही ऐसी वंदिशों की रचनाएँ कर डालीं जिनको गाकर कोई भी गायक स्वर-ताल के आनन्द का अनुभव कर सकता है।

आचार्य बृहस्पति का संकीर्ण था स्व० भातखण्डे जी द्वारा किये हुए कार्य को आगे बढ़ाना, दोषों का निराकरण करना तथा अभावों की पूर्ति करना। इसी आशय से आपने 'राग चिन्तन' शीर्षक से हाथरस से मासिक पत्रिका में मार्च, सन् 1975 से लिखना प्रारम्भ कर दिया और अप्रैल, 1976 तक बारह रागों का राग-रूप, तान-प्रस्तार तथा वंदिशें प्रकाशित कर दीं। ये बारह राग कौंसी-कानड़ा, मारु-विहाग, भैरवी, आसावरी-तोड़ी, शिवमत-भैरव, शुद्धकल्याण (औडुव,) एमनी-वसन्त, प्रभात-रंजनी, भटियार, पूरवी, अहीर-भैरव और गौड़-सारंग हैं।

आचार्य जी का कथन है कि कोई भी वंदिश जो स्वर, ताल, लय में बांधी गई हो और उसका साहित्य पक्ष भी सुन्दर व स्पष्ट हो, जो छंद की दृष्टि से भी खरी उतरे, वह श्रेष्ठ कहलायेगी और उस वंदिश का प्रभाव स्वाभाविक ही श्रोताओं पर पड़ेगा। एक कलाकार की कला तभी जादू का काम करती है और चमत्कार दिखाती है, जब उसमें ये सभी उपरोक्त गुण हों। स्वर व लय का परस्पर सुसंवाद चलता रहे तभी लोग बाह-बाह करने लगते हैं। सरस्वती के एक हाथ में वीणा होती है और दूसरे हाथ में पुस्तक। इसका तात्पर्य यह है कि कलाकार को निरक्षर नहीं होना चाहिए। उसे जितना ज्ञान अपनी कला का हो उतना ही उस कला के शास्त्र का भी, ताकि दोनों का सामंजस्य वह खूबी के साथ कर सके।

आचार्य बृहस्पति ने 'राग-चिन्तन' नामक लेखमाला में उन सभी रागों का चिन्तन किया है जो रामपुर में गाए-बजाए जाते रहे हैं। चूंकि रामपुर का सम्बन्ध दिल्ली से रहा है और यहाँ के गायन-वादन की परंपरा सदारंग-युग से प्रभावित रही है। आचार्य बृहस्पति को रामपुर के गुणियों के बीच उठने-बैठने का सौभाग्य प्राप्त रहा, अतः प्रत्येक राग को उन्होंने उसी दृष्टिकोण से लिखा है जैसा रामपुर में गाया-बजाया जाता था। भारत की हर दिशा में संगीतज्ञ रामपुर अवश्य आते रहे, क्योंकि यह रियासत पिछली कई शताब्दियों से सदारंग-परम्परा से संपृक्त रही है। इस परम्परा ने उस्ताद बहादुर हुसेन खां, उस्ताद बजीर खां, छम्मन साहब, ठाकुर नवाब अली खां, उस्ताद अलाउद्दीन खां उस्ताद हाफिजअली खां और भातखण्डे जी जैसे व्यक्तियों का निर्माण किया है जिन्होंने रामपुर के संगीत-प्रेमी नवाबों के सहयोग से संगीत जगत का उद्धार किया है। संगीत पत्रिका के सम्पादक डॉ० लक्ष्मी नारायण गर्ग ने इस लेखमाला के प्रारम्भ में यह स्पष्ट लिखा है—

“आचार्य बृहस्पति इसी स्वनामधन्य परम्परा के वर्तमान प्रतिनिधि हैं।

‘संगीत’ उनकी नवीन लेखमाला ‘राग चिन्तन’ का प्रकाशन प्रारम्भ कर रहा है। राग-लक्षण, राग-विस्तार, फिरत, लक्षणानुसारिणी वंदिश इस लेखमाला की विशेषतायें हैं। विचार और विवेक इस परम्परा की विशेषता है।”

आचार्य महोदय ने प्रत्येक राग पर गंभीरतापूर्वक चिन्तन किया है और उस राग की प्रामाणिकता को परखाने के पश्चात् ही उसका स्वरूप निश्चित किया। उनका कहना अक्षरशः सत्य है—

“संगीत के क्षेत्र में आज विचार की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि विचारक और मननशील गुरु अत्यन्त अल्प हैं, जो हैं, उन तक सबकी पहुँच नहीं है। संगीत-विषयक जो राग सम्बन्धी महाग्रन्थ इस शती में लिखे गये हैं या लिखे जा रहे हैं, वे प्रायः तर्कशून्य हैं। इनमें लक्षण कुछ कहता है, वंदिशें कुछ कहती हैं।”

(‘संगीत’, मार्च, 1975, पृ० 13)

राग चिन्तन का प्रथम राग कौंसी-कानड़ा को मालकोश अंग से गाना ही उचित है, ऐसा आचार्य जी का मत है। क्योंकि राग वागेश्री और कानड़ा का मिश्रण करने से वागेश्वरी-कानड़ा का निर्माण होना चाहिए। अतः रामपुर परंपरा के अनुसार कौंसी-कानड़ा राग में मालकोश और दरवारी कानड़ा का मिश्रण खूबी के साथ किया जाना चाहिए।

मध्यम और पंचम स्वर भी किसी राग के रूप को निश्चित करते हैं अतः कौंसी-कानड़ा गाते समय तानपूरे की बाईं ओर का तार ‘मध्यम’ में मिलाना चाहिए क्योंकि तभी राग को न्यायपूर्वक गाया जा सकता है। ‘षड्ज-मध्यम’ और ‘मध्यम-निषाद’ की संगति इस राग का प्राण है। तानपूरे पर लगातार ‘मध्यम’ स्वर छिड़ने से राग का एक वातावरण कायम हो जाता है और राग के स्वर-संवाद सहज ही लगने लगते हैं। ऐसे रागों का पंचम हमेशा केशाग्र अन्तर पर लगेगा जिसे अनुभवी कान ही पहचान सकते हैं।

राग मारू-विहाग एक मिश्रित राग है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है। किन्तु मारू राग की शिक्षा अधिकांश को नहीं है—अतः यह राग ठीक से लोग नहीं गा पाते हैं। कलाकार इस राग में मनमानी करते हैं।

राग भैरवी को प्रमुखतया ठुमरी का ही राग मानते हैं किन्तु जिन्हें रामपुर-परंपरा की शिक्षा है, वे इस राग में विलंबित खयाल भी गा सकते हैं और रामपुर के वीनकारों को इस राग में घंटों आलाप करते सुना गया है। आचार्य बृहस्पति ने इस राग की सुन्दर वंदिशें दी हैं साथ ही राग का विस्तार भी।

इसी प्रकार शिवमत-भैरव, भटियार और अहीर-भैरव रागों के विस्तार आचार्य जी ने संवाद के आधार पर समझाये हैं। तीनों रागों को गाते समय तानपूरे की बाईं तंत्री पर ‘मध्यम’ स्वर मिलाया जाएगा। क्योंकि तभी इन रागों को गाने में सुविधा होगी और राग का स्वरूप सरलता से स्थापित होगा और गायक-वादक

को स्वतः आनन्द की प्राप्ति होगी ।

आचार्य बृहस्पति ने बहुत से नये रागों का निर्माण वैज्ञानिक ढंग से किया है जो रामपुर परंपरा पर आधारित हैं जैसे—प्रभात-रंजनी, अनंग-रंजनी और संजोग आदि । प्रभात-रंजनी राग तीन रागों के मेल से बना है—तोड़ी, ललित और रामकली । इन तीनों रागों का मिश्रण इस प्रकार किया गया है जिस प्रकार तीन रंगों के धागों को मिलाकर इस प्रकार बंटना कि एक नया रंग दिखाई पड़े । इसमें प्रत्येक राग का व्यक्तित्व अलग-अलग झलकता है और कर्ण-प्रिय विभिन्न स्वर-संवादों का मेल राग की अपनी विशिष्टता को अलग स्पष्ट करता है । यह राग देश के प्रसिद्ध संगीत सम्मेलनों में श्रीमती सुलोचना बृहस्पति द्वारा गाया जा चुका है और श्रोताओं द्वारा बहुत पसंद किया गया ।

राग एमनी बसन्त—प्राचीन राग है जो अमीर खुसरो द्वारा रचित कहा जाता है । किन्तु इस राग का प्रचार आचार्य बृहस्पति द्वारा हुआ है । संगीत जगत् इस राग से अनभिज्ञ था और लोग इसके स्वरूप को भूल चुके थे । अतः यह अमूल्य शोध आचार्य महोदय ने बहुत चिन्तन के बाद किया है और इस राग में सुन्दर वंदिशें बनाई हैं जिसमें राग की खुशबू निरन्तर मिलती रहती है ।

जैसा पहले यह वर्णन आ चुका है कि आचार्य महोदय का जन्म एक विद्वान ब्राह्मण कुल में हुआ था, इनके परदादा पं० दत्तराम जी राजदरबार के गुणियों में से थे । अतः आचार्य जी ने अनेक स्थानों पर यह बात दोहराई है कि उनका संबंध पिछली पांच पीढ़ियों से रामपुर दरबार से है, इसीलिए सदारंग-परंपरा का संबंध भी परिवार के ही समान सदा रहा है ।

रामपुर परंपरा में गौड़-सारंग राग के गाने की अपनी विशिष्टता है जिस पर वहां के लोगों को नाज है । इस राग को दिन का विहाग भी कहते हैं । भात-खाण्डे जी की क्रमिक पुस्तक मालिका के चौथे भाग में इस राग की पकड़ से विद्यार्थियों को राग समझाया जाता है । आचार्य बृहस्पति विनोदप्रिय विद्वान थे । वे अक्सर कहा करते थे कि 'पकड़' तो पुलिसवालों की उस टोली को कहते हैं जो किसी बेचारे को पकड़ने के लिए आती है ।

किसी राग का स्वर प्रस्तार करने का तरीका आचार्य महोदय की इस सुन्दर कल्पना से विदित होता है—

“रागिनी एक हसीना है, जो कभी घूंघट में अपना हसीन चेहरा छिपाये रहती है, कभी थोड़ा-सा घूंघट सरका देती है, कभी घूंघट में से झांककर मुस्करा देती है, कभी घूंघट में से नजर भरकर देख लेती है और जब मौज में आती है, तो बेतकल्लुफ होकर मचलने और इठलाने लगती है । इन सभी हालात में रागिनी वही रागिनी रहती है, बदल नहीं जाती । चेहरा बेनकाब (घूंघट से हीन) हो या

‘बानकाव’ (घूँघट में) शब्दीयत (व्यक्तित्व) थोड़े ही बदलती है।”¹

आचार्य महोदय ने संगीत चिन्तन से पूर्व सितम्बर, 1968 से ‘उस्ताद ने कहा था’ नामक शीर्षक से उन्नीस रागों के तान प्रस्तार ‘संगीत’ मासिक में प्रकाशित करवाये थे। इसमें आपने अपना नाम बृहस्पति तन देकर छद्म नाम ‘मुश्तरी रामपुरी’ दिया। इसमें आपने ‘रियाज का तरीका’ बताया, गले को तैयार करने की तरतीब बताई। तानों की तैयारी के लिए ‘स्वर’ से पहले ‘ताल’ पर काबू होना जरूरी है।

शिक्षक होने के नाते आचार्य जी हमेशा अभ्यास के नये तरीके सोचा करते थे। संगीत के आधार सुर और लय हैं। इनकी उपमा शिव और शक्ति से दी गई है। लय ही गाने को हर समय सुन्दर और नया बनाती है। अतः ताल का अभ्यास पहले करना चाहिए जैसाकि पुराने उस्ताद अपने शिष्यों से करवाते थे। रोज का सबक छोटा ही होता था और रियाज ज्यादा। आज इसका बिल्कुल उल्टा होता है। लोग सबक ज्यादा चाहते हैं और रियाज कम करते हैं।

आचार्य बृहस्पति उन विद्वानों में से थे जो अपने ज्ञान का भंडार दुनिया को लुटा देना चाहते थे। जीवनपर्यन्त उन्होंने जो चिन्तन किया, सत्य का अन्वेषण किया, उसका प्रतिपादन अत्यन्त साहस के साथ किया। वे चाहते थे कि लोगों को उचित शिक्षा मिले, किसी को भटकना न पड़े। घरानों के प्रचलन के बाद बड़े-बड़े उस्तादों ने विद्या को छिपाया और अपने वंशजों तक ही विद्या सीमित रखी। जिसका फल यह हुआ कि हर घराने के दोष भी गुण में शामिल हो गए और विद्या का आदान-प्रदान बन्द हो गया।

आचार्य महोदय ने इन घरानों की आलोचना करते हुए कहा है कि—

“एक ही राग को अलग-अलग घरानों के गुणी गाते हैं। अपना-अपना ‘चलन’ होता है, अपना-अपना ‘चाला’ है, लेकिन राग वही रहता है। गायकी का फर्क राग में फर्क नहीं कर देता। राग में कौन कितनी गुंजाइश देखता है, किसके पास कितनी ‘नजर’ है, देखने की बात तो यह है। ‘घराना’ क्या है, कई पुस्तकों के तजरवे का ‘इत्र’ ही तो किसी घराने की जमापूंजी है। अगर किसी के पास बुजुर्गों की दौलत भी है और वह खुद भी पैदा करता है, तो उसके पास उन भाइयों के मुकाबले में ज्यादा माल होगा, जिन्हें बुजुर्गों की दौलत तो मिली है, लेकिन जो खुद नहीं कमाते। इसी तरह जिनके पास अपनी भी नजर है और बुजुर्गों का तजुरबा भी है, उन लोगों का नाम होता है। घराने के नाम पर राग को बर्बाद करने का हक खुदा न करे, किसी को नहीं है। जिन्हें सही तालीम है, उनकी

1. संगीत, दिसम्बर, 1968, पृ० 8।

गायकी में हर जगह राग बोलेगा।”¹

रामपुर में बड़े-बड़े गुणी लोग रहते थे, उन्हें अपने शिष्यों को शिक्षा देने का शौक था। शिष्यों के साथ वैसा ही व्यवहार रखते थे जैसे अपने बच्चों के साथ, बहुत प्यार व परिश्रम से शिक्षा देते थे, उनकी सफलता पर उन्हें आत्मिक सुख प्राप्त होता था।

आचार्य महोदय का कहना था कि सदारंग के वंशजों ने वीन और सुरसिंगार पर रागों को खूब बजाया। खयाल शैली का धीरे-धीरे प्रचार हो रहा था अतः सदारंग की बहुत-सी रचनायें लोग गाते थे किंतु उन्होंने स्वयं खयाल नहीं गाया। इसका कारण यही था कि सदारंग रागों की शुद्धता रखना चाहते थे।

रागों की प्रकृति के अनुसार ही गायन-वादन होना चाहिए। कुछ राग आलापकारी के होते हैं जिनमें गंभीरता रहती है अतः उनके तानबाजी या दौड़-भाग शोभा नहीं देती। जैसे राग दरवारी। इस राग का मिजाज गंभीर है, यह वियोग का भाव प्रदर्शित करता है। इस राग को गाते समय तानपूरे के बायें तार को यदि मध्यम में मिलाकर गायें तो इस राग के विस्तार में एक सरलता आ जाती है। क्योंकि राग दरवारी में गंधार व धैवत अति कोमल लगते हैं जिसका झुकाव ऋषभ और पंचम की ओर रहता है। स्वरों का यह सच्चा लगाव तभी संभव होगा जब मध्यम स्वर तानपूरे पर बजता रहे। इस रहस्य को रामपुर के गुणी लोग ही जानते थे, जो आज आचार्य जी ने कई संगीत गोष्ठियों में इस बात को स्पष्ट करके बताया है। दरवारी में वीन की तरह बहलावे का अंग रहना उचित है, खटके, मुफ्ती से राग का रूप नष्ट होगा। यह राग मुश्किल है क्योंकि इसमें मार्ग मिलना कठिन हो जाता है। लोग इकहरी तान लेते हैं, आसानी के लिए धैवत को वर्ज्य कर देते हैं। जो उचित नहीं है। दुहरे स्वरों के प्रयोग से ही यह राग खिलता है। जिसको जैसी शिक्षा होती है वह उसी अनुसार गाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि बुजुर्ग लोग अपने ‘गुरु’ उन शागिर्दों को बताते थे, जो योग्य होने के साथ ही साथ श्रद्धा, सेवा और त्याग द्वारा अपने गुरुओं का मन मोह लेते थे।

राग जयजयवन्ती—बुजुर्गों के अनुसार यह राग रामपुर में खूब गाया-बजाया गया है। इसमें विलावल, सोरठ और गौड़ मिले हैं। आचार्य जी हमेशा कहते थे कि उस्ताद का काम केवल इशारे से शिष्य को समझाना है और समझदार शिष्य खुद-ब-खुद नये-नये वाग लगाता है। गाना-बजाना सूझ-बूझ का ही काम है, जो जितना सोचेगा उतना ही पायेगा, जितना सुर-ताल में डूबेगा, उतना ही आनन्द प्राप्त करेगा। रामपुर के गुणियों ने रागों की बारीकियों को समझा है। स्वयं आचार्य

1. संगीत, अप्रैल, 1969, पृ० 39।

बृहस्पति अपने बचपन से ही ऐसे बुजुर्गों की संगत में रहे हैं जो गुणियों की चर्चाएं सुनाते रहते थे। उसी के फलस्वरूप उन्होंने प्रत्येक राग के रहस्य संगीत जगत् के सामने स्पष्ट करके रखे हैं।

राग-देस—यह राग भी रामपुर में बहुत गाया-झाया गया। उस्ताद वजीर खां की वीन और छम्मन साहब ने देस को बड़े लाड़ लड़ाये हैं। उस्ताद हाफिज अली खां उस्ताद अलाउद्दीन खां को इन्हीं की ड्योढ़ियों से प्रसाद में देस मिला है। आज रविशंकर और अली अकबर जो देस बजाते हैं—वह रामपुर शैली का ही है। यह राग बहुत प्रभाव करने वाला है—शीघ्र अपना रंग ले आता है। इस राग को गा-बजाकर कुछ गुणियों ने श्रोताओं को रुला भी दिया है।

आचार्य बृहस्पति ने इस राग के कुछ सवाल-जवाब भी दिये हैं।

	सवाल		जवाब
	स रे म ग रे	—	म प नि ध प
५	प ध ड म ग रे	—	सं रें ड नि ध प ५
	रे म ग रे ड	—	प नि ध प
	रे ग स रे	—	प ध म प

राग खमाज, देस, भैरवी आदि रागों को खयाल गायकों ने ठुमरी और सुगम संगीत के राग कह दिये हैं। किन्तु रामपुर घराने के गुणी विशेषकर तंतकारों ने इन रागों को गौरव के साथ जिन्दा रखा है। आचार्य बृहस्पति ने इन रागों में सुन्दर खयालों की रचनायें की हैं। जिसमें बोल-वांट का आनन्द भी लिया जा सकता है।

सदारंग की औलादों ने जिस प्रकार रागों को बरता था, उसी बुनियाद पर रामपुर के कलाकारों ने उन्हें पेश किया है। आचार्य बृहस्पति ने उन्हीं बुनियादी वसूलों के प्रचार के लिए रागों के रहस्यों को स्पष्ट किया और गुणियों तथा विद्यार्थियों के लिए सुलभ किया। संगीत के इतिहास में यह एक प्रशंसनीय कार्य हुआ है जिसके लिए संगीत जगत् आचार्य बृहस्पति का हमेशा आभारी रहेगा।

नूतन प्रबन्ध रचना

आचार्य बृहस्पति ने प्रत्येक रागों के स्वरूप को वैज्ञानिकता की कसौटी पर परखकर संगीत जगत् के सामने रखा। इन रागों के स्वर-विस्तार और तान-प्रस्तार दर्पण के समान स्पष्ट हैं जिन्हें प्रत्येक गायक और वादक अभ्यास करके लाभ उठा सकता है। रागों के सवाल-जवाब किस प्रकार से स्वर-विस्तार में खूबी लाते हैं और तानों के पलटे किस प्रकार कलाकार को लय का आनन्द दिलाते हैं, अभ्यास करें, स्वयं अनुभव करने वाली बात है।

‘बंदिश’ या ‘चीज’ का अपना महत्त्व है। सुन्दर बंदिश को प्रारंभ करते ही

महफिल में रंग जमने लगता है। सुर व ताल में सुरचित बंदिश में कुशल कलाकार अपनी आवाज से चार चांद लगा देता है। अतः गायक को अच्छी चीजें एकत्रित करने का शौक होता है। स्वर, शब्द व लय का सुन्दर सामंजस्य ही बंदिश का अपना गुण है जो सुनने में मधुर होगी।

आचार्य बृहस्पति एक कुशल वाग्गेयकार थे, उनमें संगीत और साहित्य का संगम था। 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार 'वाग्गेयकार' वह विद्वान है जिसकी योग्यता 'वाक्' और 'गेय' दोनों की रचना करने में हो। अर्थात् गीत में प्रयुक्त होने वाली भाषा का पूर्णज्ञान हो, साथ ही उसका प्रयोग स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ किस प्रकार किया जाये इसकी भी कुशलता हो। आचार्य महोदय ने हजारों बंदिशों की रचना की है। हिन्दी साहित्य के विद्वान होने के कारण आपकी सभी रचनायें रस और भाव की द्योतक हैं। कुछ उदाहरणों से उनकी गेय-रचनाओं का मूल्यांकन हम करें। उत्तम वाग्गेयकार के लक्षणों के आधार पर आचार्य जी द्वारा रचित पदों में विभिन्न गुण दृष्टिगोचर होंगे।

शब्दानुशासन—अर्थात् व्याकरण शास्त्र का ज्ञान

राग एमन—झपताल

पद 1. मंगल करनि माई जय-जय भवानी ।
तू देवि, जग जननि दुर्गे महारानी ॥
तप तपत तेरो देव मुनिगन अनंत ।
अनंगरंग तेरोई चैरो अभयदानी ॥

'अभिधान' अर्थात् किसी भी शब्द के विविध पर्याय ज्ञात रहते हैं।

राग मालकोश—झपताल

पद 2. गंगधर चन्द्रधर अमियधर गरलधर,
नागधर शूलधर शंकर पिनाकधर ।
बिपति हर गरब हर पाप हर ताप हर,
अनंगरंग मुदित मन, भज भज भज हर हर ॥

कवि को 'छन्द' के भेद-प्रभेदों का ज्ञान होना तथा उपमा आदि अर्थालंकारों और अनुप्रास आदि शब्दालंकारों के प्रयोग में कुशल होना चाहिए। ये गुण आचार्य की नीचे दी गई दो बंदिशों से स्पष्ट हैं।

राग तोड़ी—द्रुत एकताल

पद 3. हम तौ कोउ भंवर नाहि, जो इत-उत मंडरावे ।
चातक-सी हमरि बान, स्वाति बूंद सुख पावे ॥
नयी-नयी कलियां अनन्त, नित भंवरन भरमावे ।
हमरे तो अनंगरंग, उनही के गुन गावें ॥

राग बागेश्वरी—त्रिताल

पद 4.

चमकि चमकि दामिनी जात छिन माहि

दुरत छिन माहि प्रगटत ।

चपल चलनि मधुर हंसनि क्षिलमिल,

करत-हरत मेरो मन बरवस ॥

अनंगरंग अंग अंग पुलकित,

तन तरंग मन उमंग हुलसत ।

कबहुं सैन कबहुं वैन सरसत,

कबहुं अमिय करत मोहि रसवस ॥

आचार्य महोदय की सैकड़ों बंदिशें 'राग चितन' लेखमाला में 'संगीत' पत्रिका में प्रकाशित की गई हैं। संगीत नाटक एकेडेमी दिल्ली ने भी आचार्य की गेय-कृतियों को छपवाने के लिए अनुदान दिया है, जो 'राग-रहस्य' पुस्तक के रूप में संगीत जगत में आयेगी। सभी बंदिशें संगीत व साहित्य की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं और सदारंग परंपरा से प्रभावित हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि आचार्य जी के परदादा पं० दत्त राम जी अच्छे वीणावादक थे और प्रकाण्ड विद्वान भी। उनका संबंध सदारंग की पीढ़ियों से भी था अतः उसी परंपरा का प्रभाव आचार्य महोदय पर भी पड़ा।

आचार्य जी के गेय पदों में नवीन विषयों का उल्लेख प्राप्त होगा। वे विचारक थे अतः किसी चीज को लिखने से पूर्व उस विषय को सुन्दर शब्दों व भावों से संवारते थे। मां सरस्वती से विनय करने का ढंग कितना सुन्दर है, उनकी अर्चना में गायक क्या वरदान मांगता है, निम्न पद से स्पष्ट है—

राग एमन—झपताल

पद 5.

वीन बिराजै मोरे कंठ माई ।

बिचार करौं दिन रैन सुरन पै ।

बीजुरि-सी मोरी तान बनै नित ।

अनंगरंग तार रहै मेरो चैरो ॥

श्री कृष्ण-लीला का एक मनोहारी दृश्य निम्न पद में प्रकट होता है जिसमें गोपी नटखट कृष्ण को उलाहना देती है उसमें कितना स्नेह छलकता है—

राग एमन कल्याण—त्रिताल

पद 6.

मेरोई सिगरो दोस लालन, मैं ही तौ कुंज-कुंज

मुरली की कूक-हूक उपजावत रिझावत

गोपिन के मन प्रान ।

तुम तौ बारे अजान मोहन, गोकुल की गली-गली जानत

तुम्हरी तौ सरल कथा, नागर नट कोडु और ब्रज अतंगरंग ॥

मां यशोदा अपने कृष्ण को गोपियों के उलाहने से किस प्रकार बचाती हैं, उस कल्पना को कवि ने निम्न पद में साकार किया है—

राग मालकोश—त्रिताल

पद 7. तू ही तो स्यन बान मारत छिन-छिन नवेलि
दोस देत लालन को चपला-सी चमकि-चमकि
दुरत-मुरत हंसि बस करत मन ।
छेरन की बान तोरी पल-पल तोहे लाज नाहिं
मन ही मन भावै आप आवै इठलावत
गोकुल की गलियन मदमाती अनंगरंग ॥

आचार्य महोदय शिव-भक्त थे अतः उनके पदों में बहुत बार देवाधिदेव शंकर की आराधना गाई गयी है।

पद 8. नीलकंठ दयानिधि शंभो पाप-निवारन
ज्ञान-निधान मांगन आयौ तिहारे दुआर ।
कौन विधि कीजै गुनन कौ बखान, मूक सारद सेस
विचारे 'अनंगरंग' के तुम एक अधार ॥

आचार्य महोदय के बहुत से पद बोल-वांट की ठुमरियां हैं जिसमें स्वर-लय के द्वारा पद को सुन्दर रीति से सजाया है—उसका वैचित्र्य तो प्रत्यक्ष गाकर दिखाई पड़ता है। एक पद उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

राग खमाज—त्रिताल

पद 9. देखी-सुनी न काहू ऐसी तौ अनरीत
सांची कहौ मोसे कित गई प्रीत ।
सुमिरि-सुमिरि निरमोही के बैन,
गई सदा कौ जिया की परतीत ॥
अनंगरंग ऐसे तौ नाहिं काहूविध
जाहे विसारि अज भए विपरीत ॥

उपरोक्त पद का प्रसंग इस प्रकार है कि नायक की बेवफाई पर नायिका सखी से कहती है कि किसी ने भी ऐसी अनरीत न देखी न सुनी। मुझे सच बताओ कि (उनकी) प्रीति कहां गई, उस निर्मोही के वचन याद कर-करके (उनसे) मन का विश्वास सदा के लिए हट गया। हम किसी भी दृष्टि से ऐसे तो नहीं थे, जिन्हें भूलकर (वे) आज ऐसे विपरीत हो गए।

शृंगार रस का भाव निम्न पद में स्पष्ट है—

राग भूपाली—त्रिताल

पद 10. चौंकि-चौंकि लरजै मेरो मन
आज सुहाग की रैन आली

ये कैसे निबहेगी पिया संग
 कहा-कहा वरजै ।
 अनंगरंग रसरीत निराली
 कहन-सुनन की बात नाहिं सखि
 बिन बात मैं तो डरी माई मोरी
 बालम मुख सरजै ॥

आचार्य महोदय सिद्धान्तवादी व्यक्ति थे, प्रत्येक कार्य खूब सोच-विचार कर करते थे। निरन्तर चिन्तन करना उनके जीवन का लक्ष्य था। ऐसा प्रसंग निम्न पद से स्पष्ट है—

राग मालकोश—विलंबित एकताल
 पद 11. भरी गगरी बनि मौन रहिये
 अधजल गागर छलकत जाये
 करै कोलाहल सुजस न पाय ।
 गरब न कीजै तनिक गुन पाए
 एक ते एक जगत में ज्ञानी
 अनंगरंग धीर गंभीर चहिए ॥

आचार्य जी ने अपने एक लेख 'संगीत और साहित्य के समन्वय' में लिखा है कि 'खयाल के प्रमुख उन्नायक नेमत खां 'सदारंग' शब्दार्थ-भक्षी नहीं थे, उन्होंने महाकवि देव जैसे समर्थ आचार्य और रसिक शिरोमणि के चरणों में बैठकर साहित्य एवं संगीत की साधना की थी।'¹

आजकल गायक इस बात पर ध्यान देना नहीं चाहते हैं क्योंकि इसके कई कारण हो सकते हैं। कुछ कलाकार ऐसे हैं जिनको भाषा का ज्ञान ही नहीं होता अतः वे रटी-रटाई बंदिशों को जैसा का तैसा दुहराते रहते हैं। दूसरे प्रकार के कलाकार जिनके पास पुरानी अच्छी बंदिशें हैं वे दूसरों को सिखाना नहीं चाहते, इस कारण अपनी विद्या छिपाने के लिए शब्दों का उच्चारण साफ-साफ नहीं करते। तीसरे प्रकार के गायक ऐसे हैं जिनको अच्छे गुरुओं से शिक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है अतः पुस्तकों की चीजें ही रटते रहते हैं। अतः वन्दिश की अदायगी और रसभाव दोषमुक्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो अर्थ का अनर्थ भी गायकों को करते देखा गया है।

अच्छा वाग्गेयकार वह है जिसका वाक्-पक्ष और गेय-पक्ष दोनों ही संबल हों। आचार्य बृहस्पति ने एक स्थान पर लिखा है कि—'गीत' में प्रयुक्त 'वाणी' या 'भाषा' को संगीत शास्त्र में 'मातु' और 'गेय' पक्ष को 'धातु' कहा जाता है। मातु

1. संगीत चिन्तामणि (संशोधित), पृ० 402 ।

और धातु की रचना में पूर्णतया समर्थ व्यक्ति ही आदर्श वाग्गेयकार कहलाता है। जयदेव, विद्यापति और सूर जैसे मनीषी उत्तम वाग्गेयकार थे।¹

उपरोक्त दोनों गुण आचार्य बृहस्पति में विद्यमान थे जो कि उनकी रचनाओं से प्रमाणित होता है। आपकी सभी वंदिशें अर्थपूर्ण होती हैं। वे किसी वंदिश की रचना करते समय पहले शब्द-रचना करते थे तत्पश्चात् स्वर-रचना। अतः पद रचना में कोई न कोई भाव प्रकट होता है। गायक को यह पता रहता है कि वह क्या गा रहा है और किस भाव का सृजन करना है। इस प्रकार पद भी सरलता से गायक को कंठस्थ हो जाते हैं।

प्राचीन ध्रुवपद, धमार और खयाल की वंदिशों में विभिन्न छन्द मिलते हैं जिसका आजकल अभाव है। गान में छन्द और ताल का महत्त्व कितना है यह प्राचीन वंदिशों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है।

आचार्य जी की पद रचनायें विशेषतया ब्रजभाषा में हैं क्योंकि इस भाषा की सरसता और कोमलता गेयपदों के उपयुक्त होती है। वैसे खड़ी बोली और उर्दू भाषा में भी कुछ पदों की रचनायें की हैं, एक उदाहरण प्रस्तुत है—

राग संयोग—त्रिताल

पद 12. ऐसी भी क्या नाराजी कहिए
माना खता तो हमसे हुई
दीजे सजा बन्दानवाज***

आचार्य बृहस्पति का कथन अक्षरशः सत्य है कि—

“इस युग में तो ऐसे व्यक्ति भी उस्ताद कहलाने लगे, जिन्होंने केवल मुखड़ा गाकर जीवन बिता दिया और नयी पीढ़ी के मन में यह बात डाल गए कि न तो वंदिश की आवश्यकता है और न अर्थ की। तबले पर ठेका आरम्भ कराकर ‘आ, ई, अ, ओ’ का आधार लो, बहलावे करो, तानें मारो, टीप पर खड़े न हो, गला धरावर हिलाते रहो, बस गवैये बन जाओगे। यही कारण है कि जो ‘गाना’ कभी बजाने और नाचने की अपेक्षा ‘उत्तम’ कहलाता था, उसकी ‘रीढ़’ ही गायब हो गई है। उसका अस्थिपंजर लुप्त हो गया।”²

संगीत कला में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों का समावेश है। आचार्य महोदय ने तीनों कलाओं पर विचार किया है। बीन की शिक्षा का महत्त्व तंत्रियों और गायकों के लिए बताया है। गायक को अपना कंठ बीन की आवाज के सदृश बनाना चाहिए और नर्तक को ताल-मर्मज्ञ होना आवश्यक है। तीनों कलाओं की सिद्धि के लिए लय, ताल और भाव का विशेष ज्ञान होने चाहिए। साथ ही काकु-ज्ञान भी जो भावों को प्रदर्शित करने का साधन है।

1. संगीत चिन्तामणि (संशोधित), पृ० 404।

2. वही, द्वितीय संस्करण, पृ० 77।

एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार में सभा को जीतने की वाक्पटुता होती है और दूसरों के चित्त का उसे ज्ञान होता है। आचार्य महोदय की वाणी में ऐसा जादू था। महर्षि भरत ने मानव शरीर को 'गात्र-वीणा' कहा है जिसमें स्वरों तथा शब्दों—दोनों को व्यक्त करने की सामर्थ्य है। इसीलिए गायन को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। किन्तु वर्तमान युग के गायकों ने अपनी कला की दुर्दशा कर दी है इसीलिए वे निम्न स्थान पर आ गए। जबकि सदारंग के युग में गायक, वादक और नर्तक गेय-पदों के साहित्य को समझते थे। कलाकारों का सम्पर्क राज-दरवार के कवियों, पंडितों तथा विद्वानों से रहता था। इससे गायक कलाकारों की रचनायें भी भाषा, भाव व रस की दृष्टि से उच्च कोटि की होती थीं।

आचार्य महोदय का प्रयास उस युग को पुनः वापस लाने का हुआ है, इसीलिए उन्होंने अपने ग्रंथों में बार-बार इस बात पर जोर दिया है। संगीत जगत के कलाकारों को गंभीरतापूर्वक आचार्य के कथन पर विचार करना चाहिए ताकि भविष्य में गायक अपनी कला को उसी उच्च स्तर पर ले जा सकें जो सदारंग युग में था।

साहित्य-सर्जन

संगीत और साहित्य के संबंधों में वर्तमान परिस्थिति से आचार्य जी को शिकायत थी कि दोनों एक-दूसरे से बहुत दूर हो गये हैं। पहले के गायक अच्छे साहित्यकार होते थे जबकि आजकल निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं। परिणाम यह है कि बहुत-सी वंदिशों का साहित्य इतना व्यर्थ होता है कि न तो उसका कोई अर्थ होता है, न सिर न पैर। यह दूरी धीरे-धीरे समाप्त होती जाएगी तभी कलाकार को सफलता प्राप्त होगी।

आचार्य बृहस्पति वाल्यकाल से ही हिन्दी और संस्कृत में कविताएं लिखते थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे और श्लोक-रचना करने लगे थे। 15 वर्ष की अवस्था में काव्य-मनीषी की उपाधि आपको काशी से मिली। ईश्वर ने आपको अद्भुत प्रतिभा दी थी जिसका उपयोग वे जीवन-पर्यंत करते रहे। इसी कारण उन्हें 'बृहस्पति' की उपाधि से अलंकृत किया गया। असाधारण व्यक्तित्व, विशालकाय शरीर, देखने में गंभीर किन्तु उतने ही विनम्र और उसमें से फूटकर बाहर निकलने वाली हंसी के फव्वारे लोगों को आकर्षित करते थे।

आचार्य बृहस्पति जैसे बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति के पूर्वज रामपुर दरबार में सदा से सम्मानित रहे जो अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध हुए। यही कारण था कि आचार्य जी को अपने पूर्वजों के वे सभी संस्कार जन्म से ही प्राप्त हो गए थे। संगीत और साहित्य दोनों कलाओं के संस्कार इन्हें रामपुर दरबार की उच्च परम्पराओं से वाल्यकाल से ही प्राप्त होते रहे और जीवन के अंतकाल तक पल्लवित

होते रहे। आचार्य बृहस्पति का व्यक्तित्व अद्वितीय था। संगीत के क्षेत्र में उन्होंने महान् कार्य तो किया ही, इसके अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत साहित्य में भी रचनात्मक कार्य किए। हिन्दी काव्य और नाटकों की रचना की है। संस्कृत, हिन्दी (ब्रज भाषा और खड़ी बोली), उर्दू और फारसी पर आपका समान अधिकार था। आपकी हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत की सुन्दर भावपूर्ण कविताओं का संग्रह प्रकाशित हो जाने पर एक उपयोगी पुस्तक सिद्ध होगी। आचार्य बृहस्पति 1965 से आकाशवाणी दिल्ली में संगीत, संस्कृत और ब्रजभाषा के सर्वोच्च परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुए थे, अतः अपनी सूझ-बूझ से आपने संगीत व साहित्य के क्षेत्र में बहुत से नये कार्य किए। आकाशवाणी से संस्कृत भाषा में समाचार का प्रारंभ आचार्य महोदय के ही अकथ प्रयास द्वारा हुआ था। इससे संस्कृत भाषा को देशव्यापी महत्त्व व सम्मान प्राप्त हुआ। इस प्रकार संस्कृत भाषा के प्रति आपका प्रेम कितना था, यह ज्ञात होता है।

आचार्य बृहस्पति का नाटक-संग्रह 'मेघ का कवि' प्रकाशित हो गया है। इस पुस्तक में एकांकी-संकलन किया गया है, जो समय-समय पर आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। इसमें पौराणिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सभी प्रकार के रूपक हैं। आचार्य महोदय ने भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन और अनुशीलन किया है। अतः इस पुस्तक में भारतीय आत्मा की झलक स्पष्ट झलकती है। आचार्य जी मूलतः कवि-हृदय थे, उनकी काव्य-रचनाएं और गीत-रचनाएं हिन्दी के प्रसिद्ध कवि प्रसाद जी की स्मृति जागृत कर देती हैं। स्व० डॉ० विश्वनाथ गौड़ जी के शब्दों में 'मेघ का कवि' कृति 'अपनी सनातनता, भाव-प्रवणता, विश्वधर्मिता और प्रतीकात्मकता के कारण सहज ही अमर रचना होने का दावा कर सकती है।' (मेघ का कवि—भूमिका देखिए)

आचार्य बृहस्पति को मां सरस्वती का वरदान था अतः उनके आशीर्वाद से संगीत और साहित्य दोनों कलाओं में आप पारंगत थे। कवि हृदय होने के कारण आप अपनी भक्ति भावनाओं को सुन्दर काव्य रचनाओं में प्रकट करते रहे जिसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सरस्वती की स्तुति

एरी बीन वारी, बीनि बीनि डोरों पाप-पुंज,
आभा है अनोखी मन-मुकुट सुधारी आजु।
लोक-प्रतिबिम्ब, बिम्ब बापुरे अबिम्बनु के
ताहि में उभारों, हिय बीन आपु सोरौ आजु।
डारौ मुख माहि बिन्दु जुगल पयोधरनि
कर फेरि पीढि नेह दीढिसों निहारौ आजु।

चारौ पुरसारथ सुखारथ संजोह देवि

हेरि-हेरि बेरि-बेरि पूतहि उवारौ आजु ॥

सरस्वती के एक हाथ में वीणा और दूसरे हाथ में पुस्तक रहती है—तात्पर्य यह है कि आचार्य महोदय अपने जीवन में संगीत और साहित्य दोनों ही कलाओं की आराधना करते रहे। ईश्वर के जिस रूप का ध्यान आपने किया उसको काव्य रूप में प्रकट कर दिया। कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भगवान राम, कृष्ण, शिव, सीता, राधा और भगवती दुर्गा का स्मरण निरन्तर किया करते थे। आचार्य महोदय किसी विशेष पर्व पर भगवान के उसी रूप का ध्यान किया करते थे।

ईश्वर की भक्ति

भगति न जतनति उपजै, ईस कृपा तिहि मूल ।
 आरत ह्वै बिनती करिय, आनि सबै निरमूल ॥
 भगति नसावत शोक-दुःख चिन्ता-गरल कराल ।
 सकल पदारथु कर धरे, रहत आपु तत्काल ॥
 भगति-मातु सन्तत करन, निज सुत को उपकार ।
 गोद लिये हरसित फिरत, लांघत विपति-महार ॥

राम

जो पे कण्ठ दियौ राम, हुलसि-हुलसि मन
 सुधि मद-बूर नित नाम-गुन गाइये ।
 पाइयै परम सुख, पावन राखिय हिय
 जित जाइये सुगन्ध-सुभ उपजाइये ।
 छाइये विबुध मन, प्याय-प्याय अमियहि
 मानव-जनम फल लहिय, लहाइये ।
 न्याइयै उमंगि हरि-करुना-सरोवर में
 केलि-सी करिय हंसि, जनन न्हाइये ॥

जनम-जनम सुकृतन फल उभरै जु
 होय-हिय नेह हरि-पद पदमन सों ।
 कलि-मल कठिन जकरि पुनि नायं सकै
 धार बनि नायह बहाय डारे मन सों ।
 छिनु-छिनु बढ़त अनन्द, खरो रोम-रोम
 तन होय कम्प कोऊ राखत जतन सों ।
 राजत रतन सो जुं विमल उजास करै
 निसदिन जोति उपजावे कन-कन सों ॥

कृष्ण

वरनों ललित रूप, कै सुहाने सील भरो
 मुरली की धुनि कै अनोखी चक्रधर छवि ।
 नयनि मधुर कहाँ, कै नचायौ लोकनाच
 जसुदा कौ पूत वरनों कै जदु-कुल-रवि ।
 मोर कौ मुकुट कहाँ, कहाँ कै सुभट रूप
 माखन-चखनि कहाँ, कहाँ कै पुनीत छवि ।
 बोल तोतरे कहाँ कै गीता-ज्ञान अनुपम
 चकित विचारे मन, मोहित सकल कवि ॥

दास तुम्हारोई, तुम्हारोई मन, तुम्हारिय
 इन्द्रिय सकल, नाथ, पुनि मोय का परी ।
 बिहंसि लिखावहु जु चाहौ तौ कछुक नित
 लिखहुं न छन्द, हुलसि करहुं चाकरी ।
 जो पै आप करहु कृपा तौ आकर कछू न
 फुरिहै सुमति, रहै छन्द-सम्पदा खरी ।
 लेखनी सुछन्द गति चलिहै, मरालिनी-सी
 महिमा-सरोवर-तरति गुन-आगरी ॥

राधा

सुधा की सरी-सी मिसरी-सी घोरे हिय माहि,
 फोरि निसरी-सी, चन्द्रवदनि सुमेर कौ ।
 कनक छरी-सी इक, हरिन-जरी-सी, काहू
 करके परस हेत, उमरी-सी छेर कौ ।
 हिरनि डरी-सी चौंकि परै पात खटकेउ
 उमंगि भरी-सी पुनि लखै न अवेर कौ ।
 बारूनी ढरी-सी नयनन माहि गैल तकै
 बावरी-सी होय चहै मुरली की ढेर कौ ॥

स्वामिनिय बनि तुम राजु कियौ कान्ह-हिय
 रूप-गुन-आगरी, रहीं सनेह-गागरी ।
 हरि को दुलार ऐसी काहि मिल्यौ जग माहि
 कौन उपजी त्रिलोक जाकौ अस भागरी ।

गोद परी गौरव सों नेह के गुमान-भरी
 सोई सुनि-सुनि कौन मधुर बिहागरी ।
 सुमरि-सुमरि तोर केलि-कथा अजहूं तौ
 रसिकन-मन उपजत अनुराद री ॥

आचार्य बृहस्पति संगीत शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ मर्मज्ञ थे। उन्होंने कई सिद्धान्तों को कविता की पंक्तियों में बांध दिया जिसका एक उदाहरण निम्न प्रकार से है—

ग्राम-स्थापना

सुघर-संबूरा माहि जब मिलहि सुरीले तार ।
 परज माहि इक गुंजरै सुर अन्तर गन्धार ॥1॥
 सप्त-श्रुति सम्बन्ध-महि, स-ग अन्तर जिय जान ।
 स-म अन्तर नव श्रुति सदा, स-प तेरह पहचान ॥2॥
 यहै तीनि अन्तर सतत, सुर थापन-आधार ।
 ग्राम-सारणा, श्रुति, तुरत प्रगटत, करे विचार ॥3॥
 भये सारना-ज्ञान, यहि श्रुति-संख्या दरसाय ।
 आतुरता तजि, सुघर मन, ज्ञान पाइ हरसाय ॥4॥
 सुर-मण्डल इक लीजिये, साजिय इकरस तार ।
 ग्राम मूच्छना, जाति, सदा तुरत करिय निरधार ॥5॥

आचार्य जी अति मधुर स्वभाव के थे। यद्यपि उनका बाह्य रूप कठोर प्रतीत होता था किंतु हृदय उनका उतना ही मृदु था। वे अपनी बातों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। जीवन को हमेशा हंसते हुए बिताया। संगीतज्ञों तथा कलाकारों के ऊपर हास्यरस की अनेकों कविताएं लिख डाली हैं। कुछ उदाहरणस्वरूप नीचे दे रही हूँ—

इतिहास

मार धार धुरपद भयो उपज्यौ सरस खयाल ।
 'हाय-हाय' जब खयाल महं, ठुमरी कियो निहाल ॥1॥
 ठुमरि-गयिनी जब भई, बड़े खान की नानि ।
 गजलनि-कव्वालिनि भरी, जनसमूह उमंगानि ॥2॥
 'चीख-पुकार' भई उतहु, काननि धरि-धरि हाथ ।
 फिलम गीत महं लेत रस, जन-मनु भयो सनाथ ॥3॥
 गिरा अरथ, रस-भाव अरु राग-ताल सुख मूरि ।
 घुरहि एक महं 'गीत' सोह, आनि सबै कछु धूरि ॥4॥

गायकों के गायन पर व्यंग्यात्मक कुछ पंक्तियां

काननि खींचत नामु लै, छिन-छिन चलत कुचाल ।
 कारे आंखर भैंस जिमि, 'गुनियनि' गावत ख्याल ॥1॥
 भलिय जु खुसरी ना भये, सचमुचि खींचत कान ।
 'हाय हाय' सुनि ख्याल महं, देत चपत द्वै तान ॥2॥

संगीतालोचन

कौन कहत संगीत महं नाहि न रह्यो प्रभाउ ।
 श्रोता सुनि भाजत तुरत, सकत न कोटि उपाउ ॥1॥
 कसमसाहिं श्रोता रसिक, छिनु-छिनु भयौ पहार ।
 पै खां साहव आपुनी, साधि रहे गन्धार ॥2॥
 घोड़े मुखकर गुरु जवर, हिनहिनात लेहि तान ।
 पीसि-पीसि पोथी करी, बिजुरी-चाकि-पिसान ॥3॥
 कण्ठ-मथानी, राग-दधि, मथियै करिय रियाज ।
 रस-माखन गहि, छाछ तजि, मोहिय रसिक-समाज ॥4॥
 रचि-रचि सुरमहं गाइयै, वितरिय अनंद असीम ।
 बूरिय सुनि, अरु बोरिय, घर घोटिय तालीम ॥5॥
 सुर लगाय सुनियै सदा, रस लीजिय मन माहि ।
 रसिकन-उर हिय घोटियै, सकल लोक खिचिआहि ॥6॥

आचार्य महोदय जिस समय विचार-मग्न होकर कोई बात लिखते थे उस समय उनके चेहरे पर जो गंभीरता छाई रहती थी कि उन्हें क्षणभर की भी विघ्नता असह्य थी । कभी-कभी उनकी लेखनी द्वारा इतनी सुन्दर बातें निकल जाती थीं जिसकी उन्हें भी कल्पना नहीं होती थी । इसी चिन्तन का परिणाम ये नीति के दोहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

नीति

मनन कियै तें मुनि वचन, समुझि परै सत भाय ।
 संकित मन जननिउ लखत, 'कुलटा' भगति नसाय ॥1॥
 संकित मन समुझन चहहि, महामुनिन के सूत्र ।
 सिन्धु-गरभ पैठत कबहुं, नाहिन दीरघसूत्र ॥2॥
 भरत, मतंग कहा करहि, अभिनवहू निरुपाय ।
 सारंगदेवहु विवस, जित जुर्यो मूढ़-समुदाय ॥3॥

धातु न प्रत्यय जानहीं, मनहूँ प्रत्यय नाहिं ।
 श्रद्धाहीन हियो लिये, सरसुति-उपवन जाहिं ॥4॥
 गुरु घण्टाल बने फिरहिं, नहिं रहस्य कौ ज्ञान ।
 चुगली-निन्दा-बल चहंहि, जीतनु सकल जहान ॥5॥
 ज्ञान उतै, श्रद्धा जितै फल उत, जित विश्वास ।
 जित संसय उत लखि परत कबहूँ न ईस-उजास ॥6॥

आचार्य जी ने अनेकों वर्ष स्वयं-सेवक संघ में भी कार्य किया था और जेल भी आपको जाना पड़ा । उस समय देश-प्रेम से अभिभूत होकर उन्होंने 'सौगन्ध' नामक कविता लिखी जिसके कुछ अंश नीचे दिये गये हैं—

अट्टहांसी रुद्र के विषपान की सौगन्ध, ओ मां !
 राम के अभ्यर्थ शरसन्धान की सौगन्ध, ओ मां !
 चारणों के सिद्ध भैरव गान की सौगन्ध, ओ मां !
 हम बढ़ेंगे जाति के सम्मान की सौगन्ध, ओ मां !
 हंस दिया अभिमन्यु के अवसान पर आंसू न आये,
 खिंच गया गाण्डीव, फिरतूणीरमें शर कसमसाये,
 पार्थ के उस दिव्य-गीता ज्ञान की सौगन्ध, ओ मां !
 हम बढ़ेंगे जाति के सम्मान की सौगन्ध, ओ मां !

आचार्य बृहस्पति ने रामपुर में अपने जीवन के अनेकों वर्ष बिताये, अतः उर्दू भाषा पर भी उनका पूर्ण अधिकार था । वे जितनी अच्छी उर्दू बोलते थे उतना ही सुन्दर लिखते थे । कुरान का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया और उसे भारतवर्ष के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसेन को सप्रेम भेंट भी किया जिसकी भूरि-भूरि सराहना राष्ट्रपति ने की थी । नीचे उदाहरण के लिए उर्दू कविता के कुछ अंश दिये जाते हैं जो उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं—

खुद से

तू वो चन्दन है जिसे लिपटे हुए काले नाग,
 हो मुहब्बत जिसे खुशबू से, तुझे प्यार करे ।
 क्या से क्या हो गये, जो छांव में तेरी सोवे,
 जो भरोसा न करे, खुद को गुनहगार करे ।
 जो इरादा हो, मुकम्मल हो, यही शान तेरी,
 वर्ना मुदों की तरह जीने में क्या रक्खा है ।
 तू कमर कस, तेरे कदमों में पड़ी है जन्नत,
 अब तो आ होश में, क्या तौर बना रक्खा है ।

ओ मेरी आन, भला तुझसे मुझे क्या कहना,
 तू मेरी राह, मेरी शान, मेरा आलम है ।
 मैं जमाने को झुका लूंगा, हकीकत की कसम,
 तू अगर है, तो भला तू ही बता क्या गम है ।

एक स्थान पर आचार्य जी ने संगीत का उपयोग लोक के लिए होना आवश्यक है, इस बात पर जोर दिया है । उनके अनुसार वाणी का उपयोग लोक के लिए करें, जो सीधी भाषा समझता है । कवि उस लोक से प्रेरणा लें जो सीधा-सादा जीवन जीता है, जिसकी आवश्यकता सीधी-सादी है और जिसकी बोल-चाल भी सीधी-सादी है । भूखे लोग 'व्याकरण' से अपनी भूख नहीं बुझा सकते, प्यासों की प्यास 'शृंगार रस' से नहीं बुझाई जा सकती । 'स्वभावोक्ति' का आश्रय लेकर आज लोक के हृदय की बात 'लोक कवि' को कहना है ।

लोकगीतों के छन्द छोटे-छोटे होते हैं, उनकी भाषा में प्रवाह होता है, उनमें एक स्वाभाविक गति होती है, उनमें प्रयुक्त स्वर, सीधे-सादे और गिने-चुने होते हैं, बच्चे, बूढ़े, जवान, नर, नारी सुनते ही उनका अनुकरण करने लगते हैं, इनकी एक-एक पंक्ति को सुनकर तत्काल ही हजारों लोग दुहरा सकते हैं ? गांवों में लोकगीत गाने वाली महिलाएं तत्काल ही उस गीत को भी दुहराती जाती हैं, जो उन्हें याद नहीं होता । गीत के चरणों का छोटा और सरल होना इसका कारण है । आचार्य बृहस्पति ने सैकड़ों लोकगीत लिख डाले और वे स्वयं उस गीत को लोकगीत की शैली में गाकर सुनाया करते थे—जो जिन्दादिली का प्रमाण है । कुछ लोकगीतों के अंश नीचे दिये जा रहे हैं—

दहेज-प्रथा के विरोध में

ब्याह मैं नायं करौंगी ।

कुंवारी भलेइ मरौंगी ॥

जो दहेज मांगे, तो वाकी म्हाँ देखौंगी नायं ।

जो पै करजा लैके बप्पा मोकी ब्याहन जायं ॥

तो घर सों नायं टरौंगी ॥

'चन्दा' मांगने पर व्यंग्य

चन्दा दै भई दै चन्दा ।

इक चन्दा आकास बिराजै, दूजो थाली मायं ।

तीजो चन्दा सुन्दर गोरी, हम तो चन्दा खायं ॥

घूमै सुच्छन्दा । चन्दा...

कोउ दूजे को चन्दा देखें और चढ़ावें नीर ।
 कोउ पूनम कौ चन्दा पूजै हम चन्दा के पीर ॥
 खायं कलाकन्दा । चन्दा...
 चन्दा हमरौ मायं-बाप, चन्दा हमरी सन्तार ।
 चन्दा हमरौ कुटम-कबीला, चन्दा ई भगवान ॥
 हम बाके वन्दा । चन्दा...

गीत (लोकशैली में)

गामन कुआं खुदाये पुन्न । सदा खेत सिंचवाये पुन्न ।
 सिगरी उपज बढ़ाये पुन्न ॥ हरगंगा...
 खरौ माल तोलौ तौ पुन्न । नित पोल खोलौ तौ पुन्न ।
 जो सांची बोलौ तौ पुन्न ॥ हर गंगा...
 नफाखोर पकराये पुन्न । सस्ते दाम कराये पुन्न ।
 घूसखोर बंधवाये पुन्न ॥ हर गंगा...
 पोथीदान किये तैं पुन्न । विद्यादान किये तौ पुन्न ।
 ऐकै गान किये तैं पुन्न ॥ हर गंगा...

इस प्रकार के सैकड़ों गीतों की रचना आचार्य जी सहज ही कर डालते थे जिसमें गांवों की सरलता, संस्कृति का स्पष्ट चित्र प्राप्त होता है। साथ ही भाषा की मधुरता से इन लोकगीतों में प्राण का संचार हो गया।

महामहोपाध्याय आचार्य बृहस्पति संस्कृत के महान विद्वानों में से एक थे, जिन्होंने संस्कृत की शिक्षा अपने पिता जी से ली थी। बचपन से ही वे प्रवाह-युक्त संस्कृत बोल लेते थे। आपने संस्कृत भाषा में अनेक छन्द लिखे हैं जिसमें 'पार्वती-लास्यम्' उनकी प्रसिद्ध कविता है जिसका कुछ अंश यहां प्रस्तुत है—

पार्वतीलास्यम्

शशाङ्कशेखरोज्ज्वलस्मितां शुमालिकाल सद्-
 विनोदमोदसिन्धुमंजनोत्सुका पराजिता ।
 मदालसाङ्गमाङ्गना विलासदेशिका
 महेशमोहिनी महेश्वरी जयेद मंगलम् ॥1॥
 लसल्ललाटिका विलोल मौक्तिकालिशोभना
 लयोर्मिलालिताङ्ग हारमालिका मनोहरा ।
 दिगिन्नगिन्दिगिन्नगिन्दिगिन्नगिन्निधिध्वन-

नृदङ्गसङ्गिनी तनोतु पार्वती सदा शिवम् ॥2॥
 यह पूर्ण कविता 12 छन्दों की है जो आचार्य जी ने अपनी पहली पत्नी के मृत्यु

के उपरान्त लिखी थी। उनकी पत्नी साधना जी सचमुच में एक देवी थीं जिन्होंने अपना सब सुख त्यागकर अपने विद्वान पति को उनकी साधना पूर्ण करने में सहायता दी। यही कारण है कि आचार्य बृहस्पति ने नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय की हिन्दी टीका 'साधना' नाम से लिखी है जो शीघ्र प्रकाशित होगी। व्यक्तिगत जीवन में आचार्य महोदय बहुत विनोदी स्वभाव के थे। अतः मजाक करने में भी बहुत पटु थे। हास्य-रस की बहुत-सी कविताएं खेल-खेल में लिख डालीं। एक उदाहरण देखिये—

साली

सास जू की लाली है पर नाहिं घरवाली आली,
पाती सों बुलाली, कुछ ऐसी प्रीति पाली है।
गोरी है न काली, लाल गेहूं की-सी बाली पुनि,
लड़े दिन-रैन मनु गरजै दुनाली है॥
खाली इक हाथ सों बजाऊं ताली कैसे राम,
तौउ पै निभाली, खास कीकर की डाली है।
माली जो मिले तो छिन होवे ढीली-ढाली साली,
सगी है ! सगी है !! नाहिं गैले तें उठाली है ॥

इस प्रकार की हास्य रस की अनेकों कवितायें परिवार के लोगों को सम्बोधित करके लिख डालीं जैसे—सास, साली और पत्नी आदि।

आचार्य बृहस्पति को लोग संगीत-शास्त्री के रूप में ही जानते थे किंतु जब उनकी साहित्यिक रचनायें सामने आईं तो साहित्य-जगत को भी बहुत आश्चर्य हुआ कि इतनी श्रेष्ठ रचनायें करने वाला अभी तक कहां छिपा हुआ था। आपकी ब्रजभाषा की कवितायें देव, घनानन्द, सूर और बिहारी की याद दिलाते हैं।

इसके अतिरिक्त आचार्य जी ने जो गेय-पदों की रचना की है वे सब अमूल्य हैं, जिसकी सुन्दरता क्रियात्मक रूप में गाकर ही अनुभव की जा सकती है। कारण पदों के शब्द जब स्वर और लय में बांधे जाते हैं तभी उस वंदिश का आनन्द श्रोताओं को तथा स्वयं कलाकार को प्राप्त होता है। विलंबित खयाल के बोल समुद्री लहर के समान स्वरों में लहराते हैं जबकि छोटी खयाल के बोल नगीने में जड़े मोतियों के समान हैं।

संगीत-शिक्षा-पद्धति

संगीत अध्यापन एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यद्यपि कोई संगीत शिक्षक महफिल में गाने वाला या बजाने वाला न हो, तो भी उसे सुस्वर एवं ताल सहित गाने-बजाने की योग्यता तो होनी ही चाहिए। ऐसा न होने से विद्यार्थियों पर उसका

प्रभाव न पड़ सकेगा। इसके अतिरिक्त संगीत-शिक्षक में कुछ और गुणों का होना भी आवश्यक है। जैसे—शान्त चित्तवृत्ति, विद्यार्थियों की कठिनाइयों का ज्ञान एवं इस विषय में उनसे सहानुभूति, उनकी आवाज का गुण-धर्म, ग्रहण शक्ति, रुचि की जानकारी तथा सरल रीति से जो भली-भाँति मनोरंजन कर सके, ऐसी योग्यता शिक्षक में होनी चाहिए। अपने विद्यार्थियों से धीरे-धीरे परिश्रम कराने की योग्यता तथा प्रत्यक्ष गा-बजाकर उनके सम्मुख एक अच्छे आदर्श को रखने की तत्परता आदि अपेक्षित गुण एक अच्छे शिक्षक में होने चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि उत्तम कलाकार ही उत्तम संगीत-शिक्षक हो सकता है। क्योंकि कलाकार द्वारा शिक्षा देना उसके स्वभाव एवं कर्तव्यों के प्रतिकूल पड़ता है। वह कलाकार जब कभी सिखाने लगता है तो स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार गाने लगता है और अपने शिष्यों को भी उसी भाँति गाने के लिए आग्रह करता है।

संगीत का शिक्षा में महत्त्व

किसी भी विषय को पढ़ाने से पूर्व व पढ़ाते समय अपने विषय का महत्त्व, उपयोगिता तथा सौन्दर्य से पूर्णतया विज्ञ होना चाहिए। मानव जीवन व शिक्षा का संबंध तथा मानव-जीवन का संगीत से संबंध क्या है? इस विषय पर विचार करना होगा।

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री टी० रेमन्ट के अनुसार शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे मनुष्य अपने को आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बनाता है। आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास माना गया है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि संगीत ही जीवन है या जीवन ही संगीत है। जहाँ मानव जीवन सुमधुर व स्वर गति से युक्त है वही जीवन है। और जहाँ आदर्श जीवन है वहाँ स्वर व लयपूर्ण संगीत अवश्य दृष्टिगोचर होगा।

संगीत-शिक्षण की असफलता के कारण

संगीत शिक्षा के उत्तरदायी मुख्य रूप से शिक्षक हैं तथा गौण रूप से शासक वर्ग तथा अभिभावक हैं। संगीत शिक्षक संगीत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् साधना की ओर से उदासीन हो जाते हैं, उनका उद्देश्य केवल धनोपार्जन व मानपद प्राप्त करना ही रहता है। यह संगीत-शिक्षक की बड़ी भूल है।

वर्तमान संगीत-शिक्षण-पद्धति का अध्ययन स्व० आचार्य बृहस्पति ने किया और उनके अभावों की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया है।

आचार्य बृहस्पति स्वयं शिक्षक थे और इस पद पर वर्षों कार्य करते रहे। आप जैसे प्रतिभाशाली गुरु सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं जो अपने ज्ञान के प्रकाश

से अज्ञान के अन्धकार को दूर कर देते हैं। आप में श्रेष्ठ शिक्षक के सभी गुण विद्यमान थे। किसी विषय को तब तक समझाते थे जब तक वे अपनी बात शिष्य के मस्तिष्क में पूरी तरह से उतार नहीं देते थे। एक ही तथ्य को अनेक प्रकार से सरल व स्पष्ट रीति से समझाते थे। उन्होंने स्वयं अनेक अच्छे गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की थी अतः उनमें भी वे ही गुण आ गए। अच्छी शिक्षा देने का ढंग सभी व्यक्तियों को नहीं आता। शिक्षक के गुण कुछ स्वाभाविक होते हैं, कुछ अर्जित किए जाते हैं।

संगीत मुख्यतया क्रियात्मक विषय है अतः इसकी शिक्षा व्यक्तिगत गुणों पर आधारित होती है। संगीत एक रंजक कला है, जो केवल गुरु-मुख से ही प्राप्त होती है। अतः इस विद्या को प्राप्त करना अति दुर्लभ होता है। ईश्वर का अनुग्रह होने पर ही संगीत कला प्राप्त होती है। ईश्वर की कृपा के साथ ही साथ गुरु-कृपा का होना भी अति आवश्यक है। वही शिष्य सौभाग्यशाली है जिसे दोनों का अनुग्रह प्राप्त हो जाये।

यह लेखिका का सौभाग्य रहा कि बारह वर्षों तक आचार्य बृहस्पति जी का सत्संग निरन्तर प्राप्त हुआ और उनसे शिक्षा प्राप्त की है। आचार्य ने शिक्षण-विधि के रहस्य भी समझाए जिससे लेखिका को नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। संगीत के क्रियात्मक पक्ष में स्वर-भेद, राग-भेद आदि के गूढ़ मर्म प्रकाश में आए।

आचार्य महोदय की संगीत-शिक्षण-पद्धति अति वैज्ञानिक थी। संगीत के शास्त्र-पक्ष और क्रियात्मक-पक्ष दोनों का आपने गम्भीर अध्ययन किया। प्राचीन ग्रन्थों का मनन करके प्रमुख तथ्यों का सार निचोड़कर उसका प्रयोग करके स्पष्ट किया। भरत के नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय के अध्ययन में आपने संपूर्ण जीवन लगा दिया, जिसकी संस्कृत व हिन्दी टीका शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। संगीत के ऐतिहासिक पक्ष में बहुत से तथ्यों की खोज आप द्वारा हुई। असत्य का खण्डन करके सत्य का निर्भीकता से प्रतिपादन करना ही आपके व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। उनके ही शब्दों में—

“प्रत्येक कला के विकास अथवा होने वाले परिवर्तन की पृष्ठभूमि में राज-नीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारण होते हैं, संगीत के प्रत्येक अध्यापक को जब इन कारणों का ज्ञान होगा और जब वह इन्हें स्पष्ट कर सकेगा तभी अन्य अध्यापकों की दृष्टि में उसका वास्तविक सम्मान होगा।” उदाहरणार्थ तानसेन का हिन्दू जाति का होना तथा ग्वालियर में उनकी कब्र का होना असंगत है। औरंगजेब का कट्टर मुसलमान होते हुए भी संगीत प्रेमी होना भी आचार्य ने सिद्ध किया है। इनकी ऐतिहासिक पुस्तक—‘मुसलमान और भारतीय संगीत’ महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तक का अनुवाद पाकिस्तान सरकार ने शीघ्र करवा लिया है और विदेशों में इस पुस्तक को सम्मानपूर्वक पढ़ाया जा रहा है। संगीत के अध्यापकों को संगीत की दृष्टि से इतिहास के मूल ग्रन्थों का अध्ययन स्वयं करना चाहिए।

विश्वविद्यालयों अथवा कॉलेजों में शिक्षण प्राप्त किए हुए विद्यार्थी अच्छे कलाकार नहीं बन पाते हैं इसका कारण जानना आवश्यक है। इसके कुछ कारणों पर प्रकाश डालना उचित होगा, जो निम्न हैं—

(अ) विद्यार्थियों को पहले ताल का अभ्यास नहीं कराया जाता है और न उन्हें स्वतन्त्र रूप से लय की शिक्षा ही होती है। 'लय' एक स्वाभाविक वस्तु है और उसका प्रत्यक्षीकरण केवल अभ्यास में होता है। जो व्यक्ति मात्राएं गिने बिना ठीक-ठीक ताल दे सकता है, उसी में स्वाभाविक लय उभरती है। लय गाने का आधार है। बन्दिश के बोलों को गाए बिना पहले लय में याद कराना चाहिए।

(आ) बन्दिश का नोटेशन पहले लिखा दिया जाता है, यह उल्टी बात है। बन्दिश गाकर सिखाई जानी चाहिए, नोटेशन बाद की बात है। ताल दिलवाकर जब बन्दिश सिखाई जायेगी, तो विद्यार्थी की दृष्टि एक-एक स्वर पर न रहकर बन्दिश के टुकड़ों पर रहेगी, यही प्रक्रिया स्वाभाविक है।

(इ) मात्राएं गिनकर आलाप रटाए जाते हैं। जब कि विद्यार्थियों को आलाप की स्वतन्त्र शिक्षा देकर उन्हें ठेके में मिलना सिखाया जाना चाहिए। एक राग में यह आदत होने पर सभी रागों में यह कार्य सरल हो जायेगा।

(ई) गला तैयार करने के लिए उपयुक्त ताल-बद्ध अभ्यास की विधि पाठ्यक्रम में नहीं है। इसीलिए न तो विद्यार्थियों का गला तैयार हो पाता है और न उनकी तानें स्वर में होती हैं।

(उ) बन्दिश की भाषा, उसके अर्थ, शब्दों के स्पष्ट और ठीक उच्चारण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, फलतः गाना भावहीन और निष्प्राण रहता है।

(ऊ) पुस्तकों में ऐसी बन्दिशों की कमी है, जिनकी लय की दृष्टि से चूल् ठीक बैठती हों, अबग्रहों में मनमानी है, जिससे मात्राओं की संख्या तो पूरी हो जाती है, परन्तु ताल का अपना स्वतन्त्र स्वरूप प्रायः नहीं रहता।

तिलवाड़ा, त्रिताल और जत-तीनों में ही सोलह मात्राएं हैं, परन्तु इनका अपना व्यक्तित्व अलग-अलग है, धमार, झूमरा, दीपचन्दी, आड़ाचौताल—सभी चौदह मात्राओं की तालें हैं परन्तु सभी की चाल अलग है। विद्यार्थियों के सामने प्रत्येक ताल का पृथक् और अखण्ड व्यक्तित्व आना चाहिए, जो नहीं आ पाता है।

आचार्यजी अक्सर कहा करते थे कि स्वर्गीय व्यक्तियों की जयन्तियां मनाने से ही इन प्रश्नों का समाधान नहीं होगा। शिक्षण-पद्धति की विधिवत् शिक्षा होना अनिवार्य है। 'उस्ताद ने कहा था' नामक लेखमाला हाथरस से प्रकाशित 'संगीत' पत्रिका के प्रारंभिक लेखों में आचार्य जी ने इस बात को अक्सर दुहराया है कि कलाकार अनेकों मिल सकते हैं किन्तु गुरु उस्ताद बिरले ही होंगे। कुछ गुणी ऐसे होते हैं जिन्हें शिक्षा देने का शौक होता है और यश पाने का नहीं। ऐसे ही बुजुर्गों में रामपुर के नवाब मिर्जामिरहूम थे जिनकी दरबार में बड़ी इज्जत थी। सुर की

मूरत थे। लगता था कि राग और लय इनके सामने हाथ बांधे खड़े हैं। ऐसे लोग पहले शागिर्द का जेहन और गला तैयार करते थे, उसे 'सुर-व्योरा', 'ठाठ-भेद' और 'सुर-भेद' समझाते थे।

लय-ताल की प्रारंभिक शिक्षा

आचार्य बृहस्पति के अनुसार ताल का महत्त्व स्वर से अधिक है क्योंकि ताल ही वह शक्ति है जो स्वर में प्राण का संचार करती है।

'ताल' संगीत का 'आसन' है, जिस पर गीत, वाद्य और नृत्य 'प्रतिष्ठित' या टिके रहते हैं।¹

अतः विद्यार्थियों के सुर का लगाव सच्चा और दमदार हो, शिक्षक का प्रथम कर्तव्य है कि वह लय का अभ्यास करवाता रहे। लय आवाज की कमजोरी को दूर करेगी साथ ही साथ प्रारंभिक सीखने वालों के स्वर को बेसुरा होने से बचायेगी।

'ताल कोई भी क्यों न हो, मातरे (मात्राएं) तो सब में हैं। मातरा पर काबू होना पहली बात थी। ताल तो बाद को बताया जाता था। मातरा जेहन में बैठ गई तो गोया रेल की पटरी जेहन और गले में बिछ गई। जब 'पटरी' सच्ची है, तो उस पर मालगाड़ी, पैसेंजर और डाकगाड़ी अपनी-अपनी चाल से बेखटके दौड़ सकती हैं।'²

रियाज का तरीका

अभ्यास को नियमित रूप से नित्य करना चाहिए। किन्तु आज विद्यार्थियों के सामने यह समस्या खड़ी हुई है कि हम कैसे अभ्यास करें और क्या अभ्यास करें। खानदानी कलाकार अपने बच्चों को शिक्षा किस प्रकार देते हैं, उससे कॉलेज तथा विश्वविद्यालय के विद्यार्थीगण वंचित रहते हैं। आचार्य बृहस्पति ने शिक्षण-विधि के इन रहस्यों को स्पष्ट कर दिया है ताकि सभी लोग इससे लाभ उठा सकें।

सबसे पहले 10-15 मिनट सुर भरिये और आवाज का लगाव ठीक करें। आवाज गोल और वजनदार होनी चाहिए जिसके लिए यह आवश्यक है कि गाते समय मुंह का आकार बड़ा हो। यह ध्यान रहे कि जोर से आवाज निकालना और चीखकर गाना दो विभिन्न क्रियाएँ हैं। मुंह का आकार बड़ा खोलने से आवाज नाभि से उठकर आयेगी और ऐसे अभ्यास की गई आवाज में वजन और गहराई धीरे-धीरे आती जायेगी। शिक्षक को हमेशा यह ध्यान देना चाहिए कि विद्यार्थी के

1. संगीत चिन्तामणि, पृ० 494।

2. 'संगीत' पत्रिका, दिसम्बर अंक, 1968, 'उस्ताद ने कहा था'।

बैठने का ढंग ठीक है अथवा नहीं। शरीर का कोई भी अंग टेढ़ा अथवा झुका हुआ न हो और मुख की आकृति भी विकृत नहीं होनी चाहिए।

स्वर-साधना के पश्चात् उस राग के छोटे-छोटे स्वर-समूह बनाकर जिसमें राग का स्वरूप कायम रहे, ताल देकर सधवाये जाने चाहिए। इसमें ताल क्रिया के समय यह ध्यान रखा जाये कि पहले हर स्वर पर ताल दिया जाये ताकि हर स्वर का दाना बराबर रहे। यह क्रिया ठीक हो जाने के बाद कई-कई स्वर-समूहों को मिलाकर गाना चाहिए जिससे राग का विस्तार बढ़ता जायेगा। इन स्वर-समूहों में आरोह करते हुए अवरोह भी करते जायें जिससे विद्यार्थी को इस बात का ज्ञान होता जायेगा कि उन्हें किन स्वरों से लौटना अथवा पलटना है। यह बात शिक्षक अपने सामने करवाता है। अच्छे शिक्षक के गुण यही हैं कि वह अपने शिष्य को स्वर व लय की शिक्षा देते समय उसकी विचार-शक्ति को भी जागृत करता जाये। स्वर-साधना का यह अभ्यास बड़े परिश्रम व लगन से शिष्य को अपने गुरु के सामने करना चाहिए।

तानों का अभ्यास

तानों का अभ्यास किस प्रकार किया जाये इसकी विधि भी समझना आवश्यक है। राग रूप को ध्यान में रखते हुए रागों के दो-चार पलटे लय में तैयार कर लेना चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि सभी पलटे ऐसे ताल में हैं जिसमें एक ही मात्रा है। पहले हर सुर पर ताल देकर इन्हें धीमी लय में कहना चाहिए। स्वरों को कहते समय यह ध्यान रहे कि एक सुर से दूसरे सुर पर सरककर जाना है न कि फुदककर अथवा उचककर। तात्पर्य यह है कि हर स्वर में से उसके बाद वाला स्वर जन्म ले रहा है। दूसरे शब्दों में हर स्वर पर आरोह में उसके अगले स्वर का कण लगाना चाहिए। स्वरों में खड़ा प्रयोग करने से सुरों का दाना नहीं बनता है। इसके साथ ही आवाज का लगाव अच्छा और दमदार हो और किसी भी दशा में आवाज का दबाकर लगाना गाने को कमजोर और प्रभावहीन बना देगा। तानों के अभ्यास के समय अक्सर देखा जाता है कि विद्यार्थियों की मुखाकृति में कहीं न कहीं कोई विकृति आना शुरू हो जाती है। आंख मींचकर स्वरों को कहना अथवा भौंहों का तन जाना और माथे पर बल पड़ना गायक की कमजोरी प्रकट करता है। अतः अच्छा यह है कि अभ्यास करते समय सामने आईना रख लें और ध्यान रखें कि चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट रहे जिससे चेहरा विगड़ेगा भी नहीं और न तो गलत जगह पर जोर ही पड़ेगा। अपनी आवाज के अनुसार स्वर को नीचा-ऊंचा रखना चाहिए। जो आपका स्थायी स्वर गाने का हो उससे सुर नीचा ही रखना चाहिए अभ्यास के लिए ताकि तार-सप्तक के स्वरों को आसानी से कह सकें और सपाट तानें कहने में आसानी रहे। अच्छा तो यह है कि अब तक

जिस स्वर से गाते हैं उस स्वर के मन्द्र पंचम को 'सुर' मानकर अभ्यास की आदत डालें तो थोड़े ही दिनों में गायन में चार चांद लग जायेंगे और गले की आवाज में एक चमक आ जायेगी।

रागों के पलटों को बार-बार दुहराइये जब तक उसका रूप आपके मस्तिष्क में बैठ न जाए। पलटों की अच्छी साधना हो जाने पर एक-एक मात्रा में दो-दो स्वरों को कहना चाहिए। प्रत्येक मात्रा पर ताल पड़ते रहना चाहिए और हर तान कहने के पश्चात् खयाल अथवा बन्दिश का मुखड़ा कहते रहना चाहिए। इस प्रकार तानों को एकगुन, दुगुन और चौगुन की लय में अभ्यास करना चाहिए। यह विधि तानों को लय और ताल में अभ्यास करने की है।

राग यमन का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

निरे गम पम मग रेस । निरे गम निध पम मग रेस ।
 निरे गम धनि निध पम मग रेस । निरे गम धनि रेंसं
 निध पम मग रेस । निरे गम धनि रेंगं रेंसं निध पम
 मग रेस । निरे गम धनि रेंगं मपं मगं रेंसं निध पम
 मग रेस ।

एक ही पलटा बराबर की लय में हाथ से ताल देकर जब घण्टों परिश्रम किया जायेगा तब इसी एक पलटे से विभिन्न तानों के गुलदस्ते तैयार हो जाते हैं। क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'काम को काम बताता है।' यह बात केवल मुनकर निकाल देने की नहीं है। इस पर गौर करके अमल करने पर ही इसका आनन्द आयेगा।

मुंह पकड़कर सम पर आना

बन्दिश चाहे विलंबित खयाल की हो या द्रुत खयाल की, मुखड़े का महत्त्व उस बन्दिश को सुन्दर बनाता है। उस्ताद कहा करते थे कि कभी गवैया बन्दिश का 'मुंह' पकड़ता है और कभी बन्दिश का 'मुंह' स्वयं गायक को पकड़ लेता है—कहने का तात्पर्य यह है कि अच्छे गायक के समक्ष 'मुखड़ा' बार-बार आकर खड़ा हो जाता

है जैसे वह उसकी सेवा में हाजिर हो।

आचार्य बृहस्पति ने एक लेख में कहा है कि किसी भी जगह से उठकर 'मुंह' पकड़ना और सम पर आना 'मुंहपाट' का काम है। यह बिल्कुल वैसा ही है, जैसा कि चलती रेलगाड़ी में किसी भी डिब्बे की दस्ती (तेलिंग) पकड़कर चढ़ जाना। किसी खास जगह से उठकर मुखड़ा लेते हुए 'सम' पर आना बिल्कुल वैसा है, जैसा कि किसी खास स्टेशन से रेलगाड़ी पर सवार हो जाना और मंजिल (गन्तव्य स्थान या लक्ष्य) का खुद सामने आ जाना।

'मुखड़े' को सुन्दर बनाना अच्छे गुरु की शिक्षा का फल होता है। जिस शिष्य को अच्छी तालीम होगी वही लय से खेल सकता है और विभिन्न लयों में तरह-तरह के मुखड़े बनाकर गायन को सुन्दर बना सकता है। अभ्यास यदि अच्छे गुरु या उस्ताद के सामने बैठकर किया जाता है तभी उस्ताद के डर से रियाज भी अच्छा होगा। क्योंकि गाना-बजाना घण्टों का काम है, इसमें शिष्य का दिल लग जाना भी बहुत बड़ी बात है। अच्छा गुरु वही है जो अपने सामने शिष्य के हर ऐव पर नजर रखकर उसे सुधार दे।

आजकल अच्छा गुरु और अच्छा शिष्य मिलना मुश्किल है। विद्यार्थियों का यह कहना भी सत्य है कि सिखाने वाले नहीं मिलते और गुरुओं का भी यह कहना ठीक है कि अच्छे शिष्य नहीं मिलते। गायन-वादन का अभ्यास करना, सीखना, परिश्रम करना केवल दो-चार वर्षों में ही सीमित नहीं है। जीवन का बहुत बड़ा भाग संगीत-विद्या हासिल करने में लगाना पड़ता है। अतएव इतना धैर्य और त्याग जिस व्यक्ति में होगा वही इस विद्या को पा सकता है।

"अगर अल्लाह ने गाने-बजाने की रूह दी है, बुजुर्गों पर ईमान (श्रद्धा) है, मिहनत की आदत, रियाज का शौक और गाने की सच्ची लगन है, तो इन्हीं तानों में से नये-नये रास्ते सूझेंगे। पढ़कर रख दीजियेगा, तो जहां के तहां।"—'उस्ताद ने कहा था' (लेखमाला से उद्धृत)।

आचार्य बृहस्पति ने गला और हाथ तैयार करने तथा प्रत्येक राग में निर्वाध घूमने के लिए आनुवंशिक अभ्यास-क्रम को जो लेखमाला 'संगीत' पत्रिका, हाथरस से छपवाई उस पर यदि हम गौर करें और समझकर रियाज करें तो गायकी में चार चांद लग जायेंगे। शौकीन हो या खानदानी—सभी को इस तालीम से फायदा होगा। जो लोग स्कूलों में पढ़ते-पढ़ाते हैं, उनको भी एक नयी रोशनी मिलेगी। किताबों में 'फिरत' के तरीके नहीं हैं, लय की डोर में 'पिरोई' हुई तालीम नहीं है।

'उस्ताद लोग बताते कम थे, रियाज ज्यादा लेते थे। एक बात के साफ हो जाने पर, उजल जाने पर, अगला सवक देते थे। पढ़ने वाले पढ़ेंगे और मुझे अन्देशा है कि मेरी बकवास को उठाकर रख देंगे। ये तो लोहे के चने हैं, इन्हें शौकीनी में

चबाएगा कौन ? कसवियों के बच्चे रियाज से इन्हें पानी कर देंगे और कहेंगे कि हमने अपने बाप से सीखा है ? इस नाचीज का नाम कौन लेगा ?'—'उस्ताद ने कहा था' (लेखमाला से उद्धृत) ।

अभ्यास की विधि कभी लिखी नहीं गई है क्योंकि जिन्होंने परिश्रम करके और अपने बुजुर्गों की सेवा करके विद्या प्राप्त की है, उसे आसानी से किसी को कैसे सिखा दें ? बुजुर्ग लोग अपने 'गुरु' उन शागिर्दों को बताते थे, जो योग्य होने के साथ ही साथ खिदमत करके उनका मन मोह लेते थे । उस्ताद का काम इशारा देना है, समझकर शागिर्द इशारे को समझता है और खुद नये-नये 'बाग' लगाने लगता है । अकल पर जोर देकर रियाज करने में जिन्होंने खून सुखाया है, तो उन्हें ढंग की तानें सूझती हैं । यह सूझ-बूझ की बात है, जो जितना सोचेगा, उतना पायेगा ।

अच्छी तानें रटने-दुहराने से मस्तिष्क बनेगा और गला तथा हाथ तैयार होगा । अच्छे अभ्यास का फल दही के मथने के समान ही है । जिस प्रकार दही को मथने से मक्खन निकलता है उसी तरह अभ्यास से मजबूती और विश्वास बढ़ता है । स्वयं ही नये-नये रास्ते दिखाई पड़ने लगते हैं, सूझ-बूझ अपने आप बढ़ने लगती है । 'सूझ' के मतलब हैं नयी बातों का दिमाग में अचानक रौशन हो जाना और 'बूझ' का मतलब है 'सूझ' के नतीजों को समझना । किसी महफिल में रियाज पेश नहीं किया जाता है, बल्कि रियाज से निकला हुआ मक्खन पेश किया जाता है ।

रामपुर के गुणियों की संगत में रहकर आचार्य महोदय ने रियाज के रहस्य का पता लगा लिया । आचार्य जी का प्रयोजन यही था कि आजकल के विद्यार्थियों और शौकीन अध्यापकों में रियाज के लिए एक अच्छी भावना पैदा की जाए । प्रारंभिक रियाज गुरु के सामने होता है, फिर शिष्य में लगन और शौक बढ़ जाने पर वह स्वयं ही अभ्यास करेगा, उसे अभ्यास के बिना बेचैनी होगी । वर्तमान स्कूल-कॉलेज व विश्वविद्यालयों के गुरुजन यदि इन नियमों पर ध्यान देकर शिष्यों को सिखायेंगे, तो उन्हें लाभ होगा और वे रामपुर के बुजुर्गों को याद करेंगे ।

आचार्य बृहस्पति के शब्दों में—

किताबों में 'फिरत' या 'तान' का सिलसिला नहीं लिखा है । जहां सिलसिला नहीं, वहां बात नहीं बनती । 'बल' और 'पेच' जब तक लय में न हों, तब तक 'तान' या 'फिरत' की डोर नहीं बनती । जब तक कोई 'बजन' न हो, तब तक 'अच्छा दाना' या 'सुथरी तैयारी' मुमकिन नहीं ।

उस्ताद कहते थे कि "रियाज के कुछ तरीके सिर्फ उन्हीं को बताए जाते हैं, जिन्हें शऊर, गैरत हो, लगन हो, मिहनत से प्यार हो, और जिन्हें अल्लाह मियां की कुछ देन हो । इत्र नाली में डालने के लिए नहीं होता । उस्ताद अपनी नजर से

ठीक ही फमति थे, लेकिन अब तो जमाना कुछ और है। इस जमाने में दुनिया भर को बताना चाहिए। जो लायक होंगे, इससे फायदा उठाएंगे और रामपुर के बुजुर्गों का नाम लेंगे। नाम न भी लेंगे, तो ढंग से तो गावेंगे, पड़ोसियों के कान तो न खराब करेंगे।”

अब तो न उस प्रकार के गुणी ही रहे और न तो विद्या के कद्रदान। अब न तो संगीत प्रेमी नवाब या राजा ही रहे जो कलाकारों की कला की प्रशंसा करते थे और उनके मुंह मोतियों से भर देते थे। अतः आजकल विद्या सीखना और सिखलाना दोनों ही कठिन है, गुरु-शिष्य का नाता जब तक निःस्वार्थ नहीं होगा तब तक संगीत शिक्षा की सफलता दूर रहेगी।

स्वर, शब्द और ताल का मेल

विद्वानों ने ‘स्वर’ को ‘शिव’ और ‘लय’ को ‘शक्ति’ की उपमा दी है जो अक्षरशः सत्य है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म में देवता की आराधना देवी के साथ होती है जो शक्ति का प्रतीक है। संगीत में लय वह शक्ति है जो स्वर को सप्राण अथवा शक्तिमान रखती है। ताल का एक विशिष्ट रूप होता है, वह द्रुत लय में ताल देने से उभरता है। द्रुत लय में मात्राओं की गणना असम्भव है, अतः भागों के आरम्भ में शून्य और पात अर्थात् खाली-भरी के द्वारा ही आनुवंशिक गुणी अपने वच्चों को ताल रूप की शिक्षा देकर अभ्यास कराते हैं और इसी प्रकार ताल का विशिष्ट रूप मस्तिष्क में उभर सकता है।

रामपुर परम्परा में तीन ताल की शिक्षा देने का तरीका इस प्रकार है—

(अ) समान अन्तर पर एक, दो, तीन, चार गिनते रहिए। एक, दो और चार पर ‘पात’ (भरी) और तीन पर ‘शून्य’ (खाली) क्रिया करो। ‘पात’ को वे लोग ‘जरब’ कहते हैं, जिसका अर्थ ‘आघात’ होता है।

तीन ताल का प्रारम्भिक रूप

4	1	2	3
जरब	जरब	जरब	खाली
पात	पात	पात	शून्य
भरी	भरी	भरी	0

अर्थात् द्रुत लय में तीन ताल चार मात्राओं का हो जाता है। इसे तीन ताल का ‘एककल’ रूप कहेंगे। इस लय की शिक्षा सरलतम है इसीलिए खानदानी लोग

अपने बच्चों को पहले इसी की शिक्षा देते हैं। यह 'एककल' तीन ताल खूब मंज जाने पर विद्यार्थी की यह आदत हो जाती है कि वह बोलता चलता रहे तब भी उसके हाथ की ताल-क्रिया रुकेगी नहीं, जिस प्रकार हमारे शरीर की नाड़ी ठीक गति से चलती है, हृदय अपनी गति से धड़कता है, उसी प्रकार बिना सोचे इच्छित ताल की क्रिया यदि होती रहे, तब ताल 'सिद्ध' कहलाता है।

'द्विकल' तीन ताल

7	8	1	2	3	4	5	6
पात	S	पात	S	पात	S	शून्य	S
भरी	S	भरी	S	भरी	S	0	S

तीन ताल के इस रूप में आठ मात्राएं होती हैं। 7, 1, 3 पर 'भरी' और 5 पर 'खाली' रखते हैं।

'चतुष्कल' तीन ताल

आठ मात्रा के तीन ताल के अभ्यास के बाद 16 मात्राओं के तीन ताल का अभ्यास कराया जाता है। 13, 1, 5 पर 'भरी' और 9 पर 'शून्य' क्रिया होती है—

13	14	15	16	1	2	3	4
पात	S	S	S	पात	S	S	S
ताली	S	S	S	ताली	S	S	S
5	6	7	8	9	10	11	12
पात	S	S	S	शून्य	S	S	S
ताली	S	S	S	खाली	S	S	S

तीन ताल का 'एककल', 'द्विकल' और 'चतुष्कल' तीनों रूपों का अभ्यास शिक्षक द्वारा शिष्यों को जब कराया जाता है तब स्वर बलय स्वतः सिद्ध होने लगते हैं।

'तीनों ही प्रकार में दूसरे पात पर 'सम' है, परन्तु अभ्यास प्रथम 'पात' से करवाया जाता है। यह ठीक है कि 'सम' प्रथम मात्रा पर है, ताल का द्वार भी वही है, परन्तु प्रथम 'पात' से 'सम' या ताल के द्वार पर आना (आमद—फारसी शब्द, जिसका अर्थ 'आना' है) एक विशेष बल को व्यक्त करता है। प्रथम 'पात'

से आरम्भ करने पर एक जोर 'सम' पर आ जाता है। प्रथम 'पात' से 'सम' तक के भाग को 'सम' की 'भूमिका' कहा जा सकता है। इसीलिए तबलावादक कोई टुकड़ा कहकर 'सम' पर आते या ताल का आरम्भ करते हैं। वन्दिशों का मुंह भी प्रथम 'पात' से होता है।¹

"यह 'मुंह' क्या चीज है? उत्तर यह है कि ताल का आरम्भ तो प्रथम मात्रा से है, परन्तु 'मुंह' उस द्वार तक का 'गलियारा' है जिस प्रकार क्रिकेट में गेंद फेंकने वाला गेंद फेंकने के लिए निश्चित स्थान पर कुछ दूर से दौड़कर पहुँचता है और इस दौड़ से उसकी गेंद में या फेंकने की क्रिया में जोर आ जाता है, उसी प्रकार 'मुंह' से आरम्भ करने पर 'सम' का बोल एक विशेष बल से युक्त हो जाता है।"²

आचार्य बृहस्पति जी शिक्षा देते समय ताल-क्रिया पर अत्यधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि 'पात' या 'शून्य' क्रिया झटके के साथ की जानी चाहिए। पुराने पखावजी कहते थे कि 'पात' क्रिया के परिणाम-स्वरूप शरीर के जिस अंग पर अभ्यास के लिए 'पात' क्रिया की जाती थी, वहाँ नील पड़ जाते थे, 'पात' शब्द का अर्थ ही 'गिरना' या 'गिराना' है।

"जिन लोगों ने आरम्भ में क्रियाओं का अभ्यास बलपूर्वक नहीं किया है, वे सचमुच 'लय' का आनन्द नहीं जानते। 'लय' का अर्थ 'काल के प्रवाह में चित्त-वृत्ति की लीनता' है। यह लीनता तभी होती है, जब 'काल' जैसी अमूर्त वस्तु 'क्रियाओं' के द्वारा 'मूर्त' या 'दृश्य' हो जाए। यह पहले कहा जा चुका है कि लय 'शक्ति' है, जहाँ शक्तिहीनता है, वहाँ लय की गन्ध नहीं है।"³

विलंबित खयाल अभ्यास करने का ढंग

'चतुष्कल एकताल' की त्रिंदिश का एक उदाहरण देखकर यह स्पष्ट हो जाएगा कि विलंबित खयाल भी ताल देकर गाए-बजाए जाते थे। आचार्य बृहस्पति द्वारा रचित विलंबित एकताल की बंदिशें चतुष्कल एकताल में लिखी गई हैं। पहले 'चतुष्कल एकताल' को समझ लेना अनिवार्य है। 'एकताल' की बारह मात्राओं को यदि चार मात्राओं के वजन से दिया जाएगा तो कुल मात्राएं $12 \times 4 = 48$ बनेंगी। तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक मात्रा चार मात्राओं के बराबर होगी। जैसे—

1. संगीत चिन्तामणि, पृ० 496 ।
2. वही ।
3. वही ।

अंकों में :

1 s s s

X

5 s s s

2

9 s s s

3

2 s s s

6 s s s

10 s s s

3 s s s

0

7 s s s

0

11 s s s

4

4 s s s

8 s s s

12 s s s

बोलों में :

धि s s s

X

तू s s s

2

घा s गे s

3

धि s s s

ना s s s

ति र कि ट

घा s गे s

0

क s s s

0

धी s s s

4

तिर कि ट

त्ता s s s

ना s s s

तबले में बजाते समय इन बोलों को निम्न तरीके से भरना होगा ।

1	X	3	0
13 14 15 16	1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12
ता धि धि धा	धा धि धि धा	धा धि धि धा	धा ति ति ता
ना s ना नन	धि के के कि कि	धि के के कि कि	धा s धाग धग
45 46 47 48	1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12
ते रे के टे	तू के के कि कि	ना s ना नन	क तू के के कि कि
13 14 15 16	17 18 19 20	21 22 23 24	25 26 27 28
ति के के कि कि	धा s धाग धग	ते रे के टे	धि के के कि कि
29 30 31 32	33 34 35 36	37 38 39 40	41 42 43 44

बोल

ऊपर लिखे हुए एकताल में 48 मात्राएं हैं और जो तीनताल के विभागों के अनुसार लिखी गई हैं क्योंकि तीनताल के तीन आठवतियां भी कुल 48 मात्राएं दिखाती हैं। अतः एकताल की 48 मात्राओं को तीनताल की तीन आवृत्तियों में उपरोक्त ढंग से लिखा जायेगा। एकताल के इन बोलों को तीनताल के विभागा-नुसार खाली-भरी देते हुए बोलकर अभ्यास किया जाता है।

चतुष्काल एकताल में बंधी आचार्य बृहस्पति द्वारा रचित बंदिश का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

राग भैरव—विलंबित एकताल (चतुष्कल)

स्थायी

रैन बीती अंखियन माई
कोऊ ना जाने पीर पराई
कही सब कोऊ अपुन मन भाई।

3 ता धि धि धा	X धा धि धि धा	2 धा धि धि धा	0 धा ति ति ता रे रे
ध प ग गम S S S ज्ञ	मरे रे स सस वी S S तीअ	ध ध स सस खि S य ज्ञ	रे रे रे सस मा S S ईको
म म — मम ऊ S S ज्ञा	प प प पप जा S S ज्ञे	ध ध ध पप पी S S रप	ध म प पप रा S S ईक
नी ग म ध धप ही S S सब	सां नीसं ध पप को SS ऊ अ	ध म प गम पु न म ज्ञ	रे रे स सस भा S ई उरे

अन्तरा

भई अनरीत या वृज माहि
मोहन नीद चुराय लई
कौन के द्वार दीजै दुहाई।

3 ता धि धि धा	× धा धि धि धा	2 धा धि धि धा	0 धा ति ति ता प भ
म प ध धध ई S S अन	ध सं — संसं री S S तथा	ध ध सं संसं S S S वृज	ध — प प प मा S S हिमो
रें रें रें संसं ऽ S S हुन	नीं — सं संसं नीं S S दचु	ध — सं संसं रा S S यल	ध — प — प ई S S ज्को
नी ग म ध पध S S S नके	रें — सं संसं द्वा S S रदी	ध ध प पप S S S जैदु	म ग म रे सरे हा S S ई रे

इस विलंबित खयाल का स्थायी व अन्तरा तीनताल के तीन-तीन आवृत्तियों में लिखा गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बंदिश को हम तीनताल के ठेके में भी गा सकते हैं। बंदिश की प्रत्येक पंक्ति को दुहराने के लिए तथा कंठस्थ करने के लिए तीनताल को हाथ से देते हुए खयाल को गाने का अभ्यास करना चाहिए। आप स्वयं आश्चर्य में पड़ जाएंगे कि बंदिश शीघ्र याद हो गई है और ताल भी निरन्तर चल रहा है। पूरी बंदिश स्वर-ताल सहित जब पक्की हो जाये, तत्पश्चात् इसी बंदिश को चतुष्कल एकताल के ठेके में गाना प्रारम्भ करें। अब आप स्वयं अनुभव करेंगे कि आप खयाल का स्थायी, अन्तरा बड़ी चैनदारी से गा रहे हैं, कहीं भी एक मात्रा का फरक नहीं आ सकता है। अक्सर देखा गया है कि अच्छे-अच्छे तबलावादक 48 मात्राओं को बजाते समय कहीं-न-कहीं एक आध मात्रा खा जाते हैं। कारण यही है कि उन्हें लय और मात्रा के वजन की सही तालीम नहीं है।

कोई भी विलंबित खयाल यदि इस विधि से सिखाया जायेगा तो विद्यार्थियों को हाथ से ताल देकर गाना आ जायेगा और तबलावादक का उन्हें मुंह नहीं ताकना पड़ेगा। आचार्य महोदय की उपरोक्त बंदिश में एक बात गौर करने की है कि बंदिश का साहित्य अर्थपूर्ण है और स्थायी में तीव्र पंक्तियां हैं। उसी प्रकार अन्तरे में भी। ये ही पंक्तियां तीन ताल की तीन आवृत्तियां बन जाती हैं। अतः प्रत्येक पंक्ति अपने आप में स्वर, ताल व अर्थ में पूर्ण हैं जिसे विद्यार्थियों को समझाना सरल है। खयाल सिखाने की यह विधि स्कूल व कॉलेजों के लिए लाभदायक है। कक्षा में सामूहिक रूप से सिखलाने के लिए भी यह विधि बहुत सुविधाजनक है। कक्षा में यदि 10, 15 विद्यार्थी भी हों तो भी विलंबित खयाल की सामूहिक शिक्षा आसानी से दी जा सकती है। विद्यार्थी हाथ से मात्रा ताल दे रहा है और उस पर आ रहे शब्दों पर भी जोर देकर गा रहा है तो कहीं भी उसका तान गलत नहीं हो सकता है।

आचार्य बृहस्पति एक कुशल वाग्मेयकार थे। अतः उनकी बंदिशें किसी भी ताल में गायी जा सकती हैं। जिनके मस्तिष्क में ताल का रूप है और राग भी रचा हुआ है वे गायक-वादक किसी भी राग में विषय को देखते हुए उन पदों को किसी भी ताल में गा-बजा सकते हैं। क्योंकि विभिन्न ताल भिन्न-भिन्न आकार के पात्रों के समान हैं। राग दूध की भांति एक तरल पदार्थ है जिस आकार के पात्र में दूध डाला जायेगा उसी आकार में दूध दिखाई पड़ेगा।

इसीलिए यह अक्षरशः सत्य कहा गया है कि गायन, वादन और नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित हैं, बंदिश का आधार ही ताल है। ताल के मर्मज्ञ कलाकार सरलता से किसी भी बंदिश को किसी ताल में प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

प्रत्येक ताल का अपना मिजाज होता है, एक गति होती है। छन्द में आए हुए अक्षरों के अवग्रहों का एक विशिष्ट स्थान होता है और ताल के बोलों के साथ जब तक उनका सामंजस्य नहीं होता तब तक बंदिश की चूलें नहीं बैठतीं।

आज अधिकांश खयालगायक भाषा, उच्चारण, अर्थ, छन्द और ताल की उपेक्षा करके चल रहे हैं। इसलिए खयाल में बिखरावट आ गई है। निरक्षर गुणी जब से छन्द को भूलकर स्वच्छन्द हो गए तभी से मूल बंदिशों का रूप विकृत हो गया और विभिन्न घरानों के नाम पर बंदिशों की मनमानी खींचतान हुई। इस युग के संगीतोद्धारकों ने अपना ध्यान केवल राग की ओर लगा दिया और यह देखने का कष्ट नहीं किया कि गान में छन्द और ताल का महत्त्व कितना है?

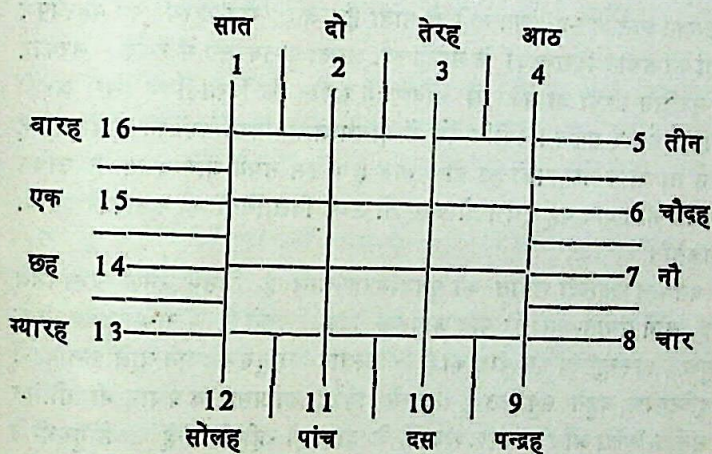
लय-वैचित्र्य (बोल-बांट अथवा स्वर द्वारा)

आचार्य बृहस्पति की बंदिशों में लय की विचित्रता रहती है और बोल-बांट का विलक्षण आधार रहता है। जैसे—1 2, 1 2 3, 1 2 3 ये मात्राएं दो, तीन,

तीन के विभाग में हैं। यदि इनका क्रम बदल दिया जाये तो यही आठ मात्राएँ विशेष प्रकार की लय का दिग्दर्शन कराती हैं। जैसे—1 2 3, 1 2, 1 2 3 और 1 2 3, 1 2 3, 1 2।

इसी प्रकार गायन, वादन, नृत्य में लय के प्रकार के अनुसार विस्तार करने की कला ही संगीत में लय-वैचित्र्य है।

मृदंग-वादन के बोलों का चयन तथा तबला-वादन एवं नृत्य करने के बोलों की विधि अनुसार रचना करते थे जिसमें तिहाइयों का प्रयोग करते थे। निम्न-लिखित 'चक्र-चित्र' द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—



उपरोक्त 'चक्र-चित्र' गायक, वादक तथा नर्तक—तीनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। चक्र में जिस मात्रा पर जो संख्या लिखी है उसी संख्या से सोलह तथा गिनने के बाद 'धा' कहना चाहिए, यह कार्य तीन बार करना चाहिए। इस प्रकार हर मात्रा से तिहाइयां बनेंगी।

“समझाकर यदि अभ्यास किया जाए, तो 'लय' मुसीबत न रहकर 'मा' की गोद हो जाती है और साधक को मनोरम झूलों में झुलाती है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर में 'लय' व्याप्त है, जब वह दिखाई दे जाती है, तब साधक के आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। गायक-वादक-नर्तक—सभी का 'लय' पर समानरूपेण अधिकार होना चाहिए।

इस प्रकार आचार्य महोदय ने स्वर, लय, ताल तथा बंदिश की शिक्षा को नियमानुसार वैज्ञानिक ढंग से समझाया है। आचार्य बृहस्पति द्वारा 'राग-रहस्य' ग्रंथमाला कई खण्डों में लिखी गई है जिसमें अनेक रागों के क्रमबद्ध आलाप जो स्वस्थान नियमों के आधार पर हैं, लयबद्ध पल्ले अथवा तानें, विलंबित, मध्य तथा द्रुत लय की बंदिशें, उनका साहित्य अर्थ सहित दिए गए हैं। इसका प्रथम खण्ड

शीघ्र ही प्रकाशित हो जायेगा। आचार्य जी ने जो शिक्षा (क्रियात्मक पक्ष) अपने शिष्यों को प्रदान की है, उसका सार 'राग-रहस्य' से प्राप्त होगा और यह शिक्षा 'सदारंग-परम्परा' की है। अतः महत्त्वपूर्ण है। इससे कलाकारों, संगीत के अध्यापकों और संगीत के प्रबुद्ध विद्यार्थियों को लाभ होगा।

आचार्य बृहस्पति की प्रमुख शिष्या तथा पत्नी श्रीमती सुलोचना बृहस्पति जिनको रागों के सम्पूर्ण रहस्य अपने विद्वान् पति द्वारा प्राप्त हुए हैं, वे स्वयं गाकर इन रहस्यों को प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न संगीत-सम्मेलनों में देश-विदेश में स्पष्ट करती हैं। क्योंकि बंदिशों की अदायगी जब तक गुरु-मुख से नहीं सुनी जाती तब तक उसका ज्ञान शत-प्रतिशत नहीं हो पाता है। अतः 'राग-रहस्य' की महत्त्वपूर्ण बंदिशों को संगीत विद्यालयों के संग्रहालय अथवा पुस्तकालय में रखकर सरकार द्वारा सुरक्षित किया जा सके तो भविष्य में संगीत के विद्यार्थीगण इससे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि देश में प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की कमी नहीं है और न तो योग्य अध्यापकों का ही अभाव है। इस समय आवश्यकता है उचित मार्गदर्शन की। यदि वह सुलभ हो जाए तो अच्छे विद्यार्थियों को कलाकार बनाया जा सकता।

वर्तमान शताब्दी संगीत का पुनर्जागरण-काल है, जिसमें अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं, लोग संगीत-कला के प्रति जागरूक दिखाई पड़ते हैं, कला-प्राप्त करने के इच्छुक हैं। किन्तु खेद इस बात का है कि उस्ताद या गुरु कहलाने वाले कलाकारों का दृष्टिकोण बहुत संकुचित है जिससे विद्या का प्रसार व प्रचार भी सीमित है। संगीत-शिक्षा आज उन अध्यापकों के द्वारा हो रही है जिन्हें अच्छे गुरुओं से मार्ग-दर्शन नहीं मिला है। अतः स्कूल व कॉलेज के विद्यार्थियों को इस विद्या की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। यह विद्या समूह में नहीं सिखाई जा सकती है। गुरु व शिष्य का परस्पर सम्बन्ध मां-बेटे के समान हो। संगीत-विद्या प्राप्त करने के लिए शिष्य के हृदय में गुरु के प्रति श्रद्धा, आदर, विश्वास तथा सेवाभाव होना आवश्यक है, तभी गुरु यदि योग्य व उदार है तो उतने ही प्यार से शिष्य को आत्मीयता से विद्यादान देगा। विद्या का मूल्य धन-दौलत से कभी नहीं आंका जा सकता है।

हम 'सदारंग' जैसे महान् गुणी के ऋणी हैं जिन्होंने संगीत कला को जीवित रखा। रामपुर की संगीत-परम्परा उन्हीं के चरण-चिह्नों पर आधारित है। रामपुर के संगीत-प्रेमी राजाओं व नवाबों के हम आभारी हैं जिन्होंने रामपुर-परम्परा के संगीत-विद्वानों व कलाकारों को आश्रय व सम्मान दिया। इस कला की रक्षा करना हम सबका परम कर्तव्य तथा धर्म है।

सहायक ग्रंथ-सूची

1. भारत का संगीत सिद्धान्त—आचार्य बृहस्पति, हिन्दी समिति लखनऊ 1959 ई०
2. भारतवर्ष का इतिहास—डा० ईश्वरीप्रसाद, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।
3. मध्ययुग का इतिहास—डा० ईश्वरीप्रसाद, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।
4. मुसलमान और भारतीय संगीत—आचार्य बृहस्पति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
5. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार—श्रीमती सुलोचना बृहस्पति राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
6. जहांगीर नामा, अनुवादक, मुंशी देवीप्रसाद, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता ।
7. संगीत चिन्तामणि, प्रथम संस्करण, आचार्य बृहस्पति, संगीत कार्यालय, हाथरस ।
8. भातखण्डे संगीतशास्त्र—चारों भाग, संगीत कार्यालय, हाथरस ।
9. राग-दर्पण (हस्तलिखित), फफीरुल्लाह, रजा लाइब्रेरी, रामपुर ।
10. मुबारिक, भाग 3 ।
11. मयदनु-उल्-मूसिकी—मुहम्मद करम इमाम, लखनऊ, 1854 ई० ।
12. संगीत समय सार—आचार्य बृहस्पति ।
13. संगीत पत्रिका—अप्रैल, मई 1960, दिसम्बर 1968 ।
14. संगीतज्ञों के संस्मरण : विलायत हुसेन खां, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।
15. नयमाबुल हिन्दू, साहबजादा अशफ़ाक़ अली खां, निजामी प्रेस, लखनऊ ।
16. आजकल—‘उर्दू पत्रिका’, अगस्त 1956 ।
17. संगीत चिन्तामणि (संशोधित), संगीत कार्यालय, हाथरस ।
18. घरानेदार गायकी—देशपांडे ।
19. मुअरिफ़ुलगमात (भाग 1 और 2)—ठाकुर नवाबअली, रामपुर ।
20. भरतखण्डे स्मृति ग्रंथ ।
21. हमारे संगीत रत्न—संगीत कार्यालय, हाथरस ।
22. अलबेरूनी का भारत ।

23. भरत-कोष, प्रो० रामकृष्ण कवि, देवस्थान, तिरुपति ।
24. संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, हिन्दी समिति, सूचना-विभाग, उत्तर-प्रदेश, लखनऊ ।
25. लक्ष्य संगीत, भतखण्डे, मलवार हिल, बम्बई ।
26. अकवरी दरबार के हिन्दी-कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्व-विद्यालय ।
27. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखण्डे, संगीत कार्यालय, हाथरस ।
28. किताब नौरस, इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय), संगीत नाटक एकेडमी, दिल्ली ।
29. खिलजीकालीन भारत, अतहर अब्बास रिजवी, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।
30. चतुर्दण्डिप्रकाशिका, वैकटभरवी, म्यूजिक एकेडमी, मद्रास ।
31. नादिरातिशाही, सम्राट शाह आलम, राजा लायब्रेरी, रामपुर ।
32. पुरानी दिल्ली के हालात, दरगाह कुली खां, अनुवादक ख्वाजा हसन निजामी
33. सहसरस, बख्शूनायक, संकलक सम्राट शाहजहां, सं० डा० प्रेमलता शर्मा, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
34. संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, भातखण्डे संगीत कार्यालय, हाथरस
35. राग-रहस्य—श्रीमती सुलोचना बृहस्पति, दिल्ली ।
36. औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, अनु० महाराजकुमार डा० रघुवीर सिंह, हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, 1951 ई० ।
37. औरंगजेबनामा, अनु० मुन्शी देवीप्रसाद, वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।
38. मुगल राजमहलों का जीवन, भगवती प्रसाद पान्थरी, किताब महल, प्रयाग
39. राग-विबोध, सोमनाथ, अडयार लायब्रेरी, मद्रास ।
40. वाग्गेयकार पंडित ओंकारनाथ, डा० प्रदीपकुमार दीक्षित, वाराणसी ।



सरयू कालेकर

सरयू कालेकरने प्रयाग विश्वविद्यालयसे भूगोलमें एम० ए० उपाधि प्राप्त की और गान्धर्व महाविद्यालय मंडल से 'संगीतालंकार'। रामपुर-सदारंग-परम्परा की आप श्रेष्ठ गायिका हैं। 'आकाशवाणी' और 'दूरदर्शन' के कार्यक्रमों में तो आप निमंत्रित की ही जाती हैं, भारत के विभिन्न संगीत-सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में भी आप अपनी कला का प्रदर्शन करती रहती हैं।

संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपने प्रयाग के सुप्रसिद्ध गायक पं० भोलानाथ भट्ट से ग्रहण की तत्पश्चात् संगीत के आनु-वंशिक गूढ़ रहस्यों की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक पक्ष की शिक्षा वाग्गेयकार आचार्य बृहस्पति के चरणों में बैठकर बारह वर्षों तक निरन्तर प्राप्त की।

आजकल आप गवर्नमेन्ट कॉलेज फॉर गर्ल्स, चंडीगढ़, पंजाब विश्वविद्यालय, में संगीत की विभागाध्यक्ष हैं।

आगामी प्रकाशन

स्वराध्याय

(नाट्यशास्त्र का २८वां अध्याय संस्कृत-हिन्दी भाष्य, टीका सहित)

भारतीय संगीतशास्त्र का मुख्य और आदिम स्रोत ~~है~~ नाट्यशास्त्र है। उसमें भी अट्ठाईसवां अध्याय स्वर विधि का प्रतिपादक है और स्वर ही संगीत का प्रमुख घटक है। संगीत के लक्ष्यलक्षण के मर्मज्ञ विद्वान् स्व० आचार्य बृहस्पति द्वारा इस अध्याय पर रचित संस्कृत में 'सञ्जीवन' भाष्य और हिन्दी में 'साधना' टीका का यह प्रकाशन न केवल संगीतशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए, अपितु भारतीय संस्कृति के सामान्य विद्यार्थियों के लिए भी बहुमूल्य है। इसमें स्वर, श्रुति, ग्रास, मूर्च्छना, जाति आदि के रहस्यों का उद्घाटन हुआ है और आगे अनुसन्धान के लिए दिशासूचन भी।

भरत, शाङ्गदेव आदि के ग्रन्थों को आधार बनाकर बीसवीं सदी के छठे दशक से जो अनुसन्धान हो रहा है और जो भी प्रकाशन हुए हैं, उन सबमें प्रस्तुत कृति का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि यह मूल ग्रन्थ के पाठ पर ही परम्परागत रीति से भाष्य और टीका की शैली में है। संस्कृत के ज्ञाता और उससे अनभिज्ञ—दोनों प्रकार के पाठकों के लिए यह उपादेय ही नहीं अपरिहार्य है। आज संगीतशास्त्र में अनुसन्धान के इच्छुक अधिकांश विद्यार्थी इस योग्य नहीं होते कि नाट्यशास्त्र का स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सकें। प्रस्तुत प्रकाशन उनके लिए बन्द द्वार खोलकर एक बड़े अभाव की पूर्ति करेगा।

राग-रहस्य

आचार्य बृहस्पति एवं सुलोचना बृहस्पति द्वारा लिखित पुस्तक 'राग-रहस्य' अथवा सदासंग परम्परा का 'प्रथम खण्ड' सङ्गीतानुरागियों, कलाकारों, सङ्गीत के अध्यापकों एवं सङ्गीत के प्रबुद्ध विद्यार्थियों की सेवा में शीघ्र प्रकाशित होने वाला है।

प्रस्तुत खण्ड में कल्याण, शुद्ध बिलावल, खमाज एवं मिश्र खमाज, शुद्ध काफी और मिश्र काफी, जौनपुरी, शुद्ध भैरवी और मिश्र भैरवी, मारवा, शुद्ध पूर्वी और पूर्वी, तोड़ी तथा भैरव का साङ्गोपाङ्ग विवेचन सदारङ्ग परम्परा की दृष्टि से है।

प्रत्येक राग में 'स्वस्थान-नियम' के अनुसार क्रमबद्ध आलाप, आनुवांशिक अभ्यास क्रम, लयबद्ध सञ्चार या पल्ले, वन्दिश का साहित्य एवं प्रसङ्ग सहित आचार्य बृहस्पति की 'अनङ्गरङ्ग' मुद्रा से अंकित कुछ वंदिशें हैं।

विषय अत्यन्त गंभीर एवं श्रमसाध्य है।

